महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन
के द्वारा प्रायोजित ग्रन्थमाला

गोतम ऋषियों का वैदिक वाङ्मय में योगदान

लेखक:
वेदाचार्य डॉ. केशवप्रसाद मिश्र
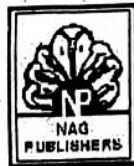
नाग पब्लिशर्स
११ए, यू. ए. जवाहर नगर
दिल्ली ११०००७
भारत

प्राक्कथन

प्रस्तुत ग्रन्थ 'गोतम ऋषियों का वैदिक वाङ्मय में योगदान' उपलब्ध वैदिक वाङ्मय के आधार पर सप्रमाण लिखा गया है। वैदिक भाग तथा पौराणिक भागों में लिखा जाने वाला यह ग्रन्थ गोतमगोत्रीय ऋषियों के तपोबल तथा भारतीय जन के सामाजिक तथा सांस्कृतिक उन्नयन एवं वैदिक सभ्यता के प्रचार-प्रसार का परिचायक है। वैदिक गोतम राहूगण ने यदि पंचाल स्थित सरस्वती नदी से विहार स्थित सदानीरा नदी तक वैश्वानर को लाकर वैदिक यज्ञाग्नि का प्रचार कर पावन प्रदेश बनाया तो पौराणिक गौतम महर्षि ने अपने आश्रम में समस्त ऋषियों तथा भारतीय जनों का २४ वर्ष के अवर्षण में भरण-पोषण कर तथा शंकर के जटाजूट से गोदावरी गंगा को भूतल पर लाकर दक्षिण भारत को पूत तथा सुसमृद्ध किया। प्राचीन भारत की सांस्कृतिक, सामाजिक तथा चारित्रिक विशेषता, अङ्गिरा, गोतम राहूगण, नोधा, वामदेव, बृहदुक्थ दीर्घतमा, कक्षीवान्, आरुणि उद्दालक, श्वेतकेतु, नचिकेता, अयास्य, घोषा, उतथ्य और उशना के कर्तृत्व में समाविष्ट है। वैदिक अर्थ के विरुद्ध अहल्या के लोकापवाद के सम्बन्ध में किये गये परवर्ती दुष्प्रचार का सर्वप्रथम सप्रमाण खण्डन एक पृथक् परिच्छेद में यहाँ किया गया है। इस प्रकार ऐतिहासिक सूचनाओं, ऋषि-मर्यादाओं तथा वैज्ञानिक तथ्यों को उद्घाटित करता है यह ग्रन्थ। मन्त्रद्रष्टा वैदिक ऋषियों की साधना और तपस् के विषय में ज़नसाधारण को विशेष जानकारी नहीं है। प्रस्तुत ग्रन्थ इस अभाव की पूर्ति की दशा में एक महत्त्वपूर्ण प्रयास है। वेदाचार्य डॉ. केशवप्रसाद मिश्र, जो इस ग्रन्थ के रचयिता हैं, स्वयं भी गोतम ऋषियों के गोत्र में समुत्पन्न मनीषी हैं। उन्होंने इस वंश के बावन

ऋषियों के कृतित्व और व्यक्तित्व के विषय में अत्यन्त मनोयोग से प्रामाणिक सामग्री इस ग्रन्थ में समाविष्ट की है - इसके लिए वे हमारी हार्दिक श्लाघा के आस्पद हैं।

इस ग्रन्थ के माध्यम से गोतम ऋषियों के विषय में पाठकों को, आशा है, विश्वसनीय जानकारी सुलभ होगी।

इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः।

प्रो. ओमप्रकाश पाण्डेय

(सदस्य-सचिव)

म.सा.राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन

प्रस्तावना

भारत के प्राचीन उदात्तचरित विज्ञानवेत्ता ऋषियों के विषय में अन्तर्हित रहस्यों को उद्‌घाटित करने के उद्देश्य से इस ग्रन्थ का प्रणयन किया गया है। ऋषि-ऋण से मुक्त होने के लिये ऋषियों पर ग्रन्थ लिखने का विचार मेरे मन में छात्र-जीवन में ही आविर्भूत हुआ। जिन ऋषियों ने प्राचीन भारत के सामाजिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्र के उन्नेता होने एवं भारत को विकसित तथा सम्पन्न बनाने को अपना प्राथमिक कर्तव्य माना था तथा उसे जगद्‌गुरु पद पर आसीन किया था, उन ऋषियों में से एक ऋषिसमूह ५२ गोतम ऋषियों का भी है। इनके विषय में वैदिक तथा पौराणिक आधार पर लिखित ग्रन्थ आपके समक्ष है।

वेद विद्या प्रतिष्ठान की तात्त्विक विवेचना का यह सुपरिणाम है कि यह ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है। प्रतिष्ठान के वर्तमान सचिव प्रो. ओम् प्रकाश पाण्डेय के प्रति हार्दिक सौमनस्य ज्ञापित करता हुआ मैं हृदय से उनका आभार मानता हूँ।

ग्रन्थागार से अनेक ग्रन्थों की सहायता करने वाले शा. स्नातक महाविद्यालय सीधी तथा महाराजा महाविद्यालय छत्तरपुर के ग्रन्थपालों द्वारा समय-समय पर आवश्यक पुस्तकें प्रदान कर जो सहायता की गई मैं उन्हें सदाशीर्वचनों से संपुष्ट करता हूँ।

इस अवसर पर श्री वागीश्वरीलाल प्राथमिक शिक्षक की सदाशयता तथा सहयोग से मैं उपकृत रहा तदर्थ मैं उन्हें स्मरण करता हूँ। संस्कृत तथा वेद के क्षेत्र में प्रथम गुरुवर्य्य पं. श्री कमलनाथ शुक्ल वेदधर्माचार्य का अधमर्ण हूँ जिन्होंने मुझे व्याकरण पढ़ाना

प्रारम्भ किया था। ज्योतिष की भी समस्या का समाधान किया। ऐसे वेद अध्यापयिता का मैं आजीवन ऋणी रहूँगा जिन्होंने मुझे सत्परामर्श दिया था। पं. श्री राजाराम मिश्र ने मध्यमा से आचार्य प्रथम वर्ष तक अर्थसहित वेद-भाष्य पढ़ाया था उनके प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन करता रहूँगा। पं. श्री भगवत् प्रसाद मिश्र, वेद विभागाध्यक्ष, राजकीय संस्कृत महाविद्यालय वाराणसी के शिष्यत्व में वेदाचार्य द्वितीय वर्ष तथा तृतीय वर्ष की उच्च शिक्षा प्राप्त की। अतः उनका हृदय से कृतज्ञ हो भारग्राही हूँ। पं. क्षेत्रेश चन्द्र चट्टोपाध्याय ने मुझे शोध-कार्य-हेतु विषय प्रदान कर वेद पर लेखनी चलाने का साहस उत्पन्न कराया एतदर्थ मैं उनका सतत ध्यानकर्ता हूँ।

डॉ. केशव प्रसाद मिश्र

सङ्केत सारिणी

अ.अ	अथर्ववेदीय बृहत्सर्वानुक्रमणिका
अ.	अथर्वशिखोपनिषत्
अ.सं.	अथर्व (वेद) संहिता
आ.वे.ग.	आग्निवेश्य गृह्यसूत्र
आ.गृ.	आपस्तम्ब गृह्यसूत्र
आ.धा.	आपस्तम्ब धर्मसूत्र
आ.श्रौ.	आपस्तम्ब श्रौतसूत्र
आ.ब्रा.	आर्षेय ब्राह्मण
आश्व.श्रौ.	आश्वालायन श्रौतसूत्र
आश्व.गृ.	आश्वलायन गृह्यसूत्र
इ.स्तु.	इन्दिशे स्तूदियन वेबर
उ.	उणादिसूत्र
ऋ.	ऋक् मंहिता
ऐ.आ.	ऐतरेयारण्यक
ऐ.ब्रा.	ऐतरेयब्राह्मण
क.कठकपि.	कपिष्ठलकठ संहिता
कठो.	कठोपनिषत्
का.गृ.	काठक गृह्यसूत्र

काठ.सं.	काठक संहिता
का.श.ब्रा.	काण्वशतपथ ब्राह्मण
का.	काण्व संहिता
कात्या. श्रौ.	कात्यायन श्रौत सूत्र
की.मै.	कीथ मैकडानल (वैदिक कोश)
कौ.	कौथुमी संहिता
कौ.सू.	कौशिक सूत्र
कौ.ब्रा.	कौषीतकि ब्राह्मण
कौ.ब्रा.उ.	कौषीतकि ब्राह्मणोपनिषत्
खि.	खिल सूक्त
चा. अ.	चारायणीयार्षाध्यायानुक्रमणिका
छा.उ.	छान्दोग्योपनिषत्
जै.उ.	जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण
जै. ब्रा.	जैमिनीय ब्राह्मण
जै. आ.	जैमिन्यार्षेय ब्राह्मण
जै.	जैमिनीय संहिता
जै. श्रौ	जैमिनीय श्रौतसूत्र
तां.ब्रा.	ताण्ड्य महाब्राह्मण
तै. आ.	तैत्तिरीय आरण्यक
तै. ब्रा.	तैत्तिरीय ब्राह्मण
तै. सं.	तैत्तिरीय संहिता
निघ.	निघण्टु
नि.	निरुक्त

पा. उ.	पाणिनीय उणादिसूत्र
पा.उ.भो.	पाणिनीय उणादि भोजवृत्ति
पा.ग.	पाणिनीय गणपाठ
पै.	पैप्पलाद संहिता
ब्रह्म.	ब्रह्म पुराण
ब्र. वै.	ब्रह्मवैवर्त पुराण
बृ.	बृहद्देवता
ब्र.	ब्रह्माण्ड पुराण
ब्र.उ.	ब्रह्मोपनिषत्
बृ.मा.	बृहदारण्यक उपनिषत् माध्यन्दिन
बृ.का.	बृहदारण्यक उपनिषत् (काण्व)
बौ.गृ.	बौधायन गह्यसूत्र
बौ.ध.	बौधायन धर्मसूत्र
बौ.श्रौ.प्र.	बौधायन श्रौत प्रवर
बौ. श्रौ.	बौधायन श्रौतसूत्र
भा.गृ.	भारद्वाज गृह्यसूत्र
भा.शि.	भारद्वाज शिक्षा
भा.श्रौ.	भारद्वाज श्रौतसूत्र
म.	मत्स्य पुराण
महा.	महाभारत
मा.सं.	माध्यन्दिन संहिता
मु.	मुण्डकोपनिषत्
मै.सं.	मैत्रायणी संहिता

अनुक्रमणी

वैदिक भाग

भूमिका

प्रस्तुत ग्रन्थ की उपयुक्तता

वेदों में बहुत से वैज्ञानिक तत्त्व हैं जिन पर आज तक प्रकाश नहीं हो पाया है। वे सभी तत्त्व वेद-मन्त्रद्रष्टा ऋषियों के ज्ञान से उत्पन्न हुए हैं। वेद मन्त्रद्रष्टा ऋषियों के विषय में कोई ऐसा ग्रन्थ नहीं है जिससे ऋषियों के परिचय प्राप्त किये जा सकें। ऋषि ऐसे तो बहुसङ्ख्य हैं। सब ऋषियों का एक साथ परिचय प्राप्त करना तथा वेदोपबृंहण में उनका योगदान एक ही ग्रन्थ में एक साथ करना दु:साध्य है। अत: एक गोत्र के मन्त्रद्रष्टा ऋषियों और उनका योगदान समस्त वैदिक वाङ्मय से एकत्र कर उन पर विश्लेषण करना इस ग्रन्थ का अभिमत है। सब से प्रथम गोतमगोत्रीय तथा वंशीय ऋषियों के तपोनिस्सृत तत्त्वों तथा उनके विशद वाङ्मय सम्बन्धी ज्ञान तथा परिचय प्राप्त करना अभीष्ट है। अभी तक जो वैदिक वाङ्मय के अनुशीलन से ५२ गोतमवंशीय ऋषियों और आचार्यों के नाम समुपलब्ध हुए हैं, उनका वेदोपबृंहण में योग क्या है इसे व्यक्त करना इस ग्रन्थ का ध्येय है।

प्रस्तुत विषय पर गवेषणा-कार्य में प्रवृत्त होने पर वैदिक ऋषि गोतम के संबन्ध में उनके पुत्र और पिता का नाम ज्ञात करना नितरां कठिन था पर वैदिक वाङ्मय के आलोडन से पिता, पुत्र और आनुवंशिक परम्परा एवं पुत्र-पौत्रादि की दो तीन पीढ़ियों तक का पता लगा। जिन ऋषियों के सम्बन्ध में विद्वज्जन या सामान्यजन का ज्ञान

तमसाच्छन्न अर्थात अज्ञानरूपी अन्धकार से घिरा हुआ है उस अज्ञान को दूरकर ज्ञान के आलोक तक पहुँचाना इस ग्रन्थ का उद्देश्य है। अन्तर्हित ऋषियों के विशिष्ट सहयोग का सुस्पष्टीकरण अत्यन्त आवश्यक है। इन बावन ऋषियों का वैदिक वाङ्मय में योगदान दिखाने के पश्चात् इन ऋषियों का पुराणों में क्या चरित-वैशिष्ट्य है, इसका भी अध्ययन हुआ है। फलस्वरूप यह ग्रन्थ दो भागों (वैदिक तथा पौराणिक भाग) में पृथक्-पृथक् रूपों में समुपस्थित हुआ है।

ऋषियों का वेदोपबृंहण में योग तथा उनका परिचय

ऋषियों का परिचय प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक है। जन्म के समय ही मनुष्य तीन ऋणों से ऋणी हो जाता है। ''जायमानो ह वै पुरुषस्त्रिभिर्ऋणैः ऋणवान् जायते''। देव ऋण, ऋषि ऋण और पितृ ऋण। देव-ऋण से मुक्ति तो अनेक यज्ञों को संपन्न करने से हो जाती है। पितृ-ऋण से मुक्ति धर्मार्थ प्रजोत्पादन करने से अर्थात् वंश परम्परागत प्रजातन्तु का विच्छेद न हो **"प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः"** इस उद्देश्य के परिपालन से मुक्ति मिल जाती है। ऋषि-ऋण से मुक्ति तो वेदों के अध्ययन से ऋषियों के दृष्ट मन्त्रों के परिशीलन से वेद विद्या के अध्ययन और अभ्यास से प्राप्त होती है –

विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम गोपाय मा शेवधिष्टेऽहमस्मि।
असूयकायानृजवेऽयताय न मां ब्रूया वीर्यवती तथा स्याम्।

चतुर्दश विद्याओं का अध्ययन

पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश।

इस उक्ति में चारों वेद और षडङ्ग दशविद्यायें वैदिक वाङ्मय के अध्ययन से ही परिपूर्ण हो जाती हैं। इन दश विद्याओं का अध्ययन और अर्थज्ञान करना तो परमावश्यक है। १५० ई.पू. के महर्षि पतञ्जलि द्वारा प्रोक्त ''**ब्राह्मणेन निष्कारणः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च**'' यह नियम यद्यपि ब्राह्मण के लिए नितरां आवश्यक है तथापि द्विजाति मात्र

के लिये वेदाध्ययन करना सुसङ्गत है। **इन वेदों के अध्ययन में परम तत्त्व निहित हैं** - इस दृष्टि से अध्ययन, अनुशीलन, परिशीलन अपेक्षित ही है। तथापि उन मन्त्रों के द्रष्टा के सम्बन्ध में भी जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है। "**साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः।** ऋषि धर्म के साक्षात् कर्ता हुये।[1]

इन ऋषियों के तत्त्व-ज्ञान के संबंध में तथा ऋषियों के वैयक्तिक परिचय की भी आवश्यकता है।

यद्यपि वेदों में एक लाख मन्त्र थे "**लक्षं तु वेदाश्चत्वारः**" पर आज २२५०० मन्त्र ही चारों वेदों में समुपलब्ध होते हैं। इन मन्त्रों में से १४७५ मन्त्रों के द्रष्टा ऋषियों के संबंध में परिचय प्राप्त करना और उन ऋषियों के वेदोपबृंहण में सहयोग के तात्कालीक परिशीलन का प्रयास किया जा रहा है क्योंकि एक साथ ही सभी ऋषियों पर तथा उनके मन्त्रों पर विचार करना नितरां असम्भव है। अतः ऋग्वेद के इन ऋषियों द्वारा दृष्ट १४७५ मन्त्रों पर यह प्राथमिक प्रयास है। एक गोत्र से संबद्ध ५२ ऋषियों का परिचय उपबद्ध हो जाय तदनन्तर अन्य ऋषियों संबंधी कार्य सम्पन्न होगा।

इन ५२ गोतमों में १८ मन्त्र द्रष्टा ऋषि हैं और शेष ३४ यज्ञ प्रवर्तक आचार्य। क्रमबद्ध रूप में इन ऋषियों के संबंध में ६ लेख लिखे गये हैं जो विभिन्न अखिल भारतीय प्राच्य विद्या सम्मेलनों में पढ़े गये हैं। यह ध्यान देने की बात है कि सर्वप्रथम गोतम ऋषियों पर ध्यान केन्द्रित किया गया है।

ऋषि का क्रमबद्ध इतिहास कठिनाइयों से भरा है। अनेक वर्षों के चिन्तन से कुछ क्रम प्राप्त हुये हैं। स्वयं गोतम के पिता और पुत्र के बारे में बड़ी कठिनाई से इतिहास और वंशपरम्परा या शिष्यपरम्परा का ज्ञान प्राप्त हुआ है। इस ग्रन्थ की प्रत्येक पङ्क्ति वैदिक वाङ्मय के प्रमाणों से ओतप्रोत है। पहले इस पुस्तक के प्रकाशनार्थ १९७५ ई. में भारत सरकार द्वारा मुद्रण हेतु ६० प्रतिशत अनुदान की स्वीकृति

---

१. धर्म का साक्षात्कार करने वाले या द्रष्टा ऋषि हुए। संपादक.

मिल चुकी थी तथापि इसमें आवश्यक परिवर्धन-हेतु समय की अपेक्षा हो गई।

ग्रन्थ के स्वरूप में विस्तार- इस पुस्तक का प्रारम्भ में एक ही भाग था वैदिक भाग, पर अब इसका दूसरा भाग पौराणिक भाग भी तैयार किया गया है तथा वैदिक भाग का हिन्दी भाषानुवाद भी सामान्य जन के उपयोग हेतु किया गया है। इस प्रकार यह प्रयास नूतन है जिस पर वेदाध्यायी विद्वानों का ध्यान आकृष्ट नहीं हुआ है। यद्यपि पाश्चात्य वैदिक विद्वानों ने इस प्रकार का कोई वेदानुशीलन कार्य नहीं किया है तथा भारतीय विद्वानों ने भी अपना मूल्यवान् समय इस प्रकार के दिशानिर्देशन में नहीं लगाया है।

स्वतंत्र भारत में वेदों के अध्ययन-अध्यापन पर ध्यान तो जाना ही चाहिये। मन्त्रों के उच्चारण, अष्ट विकृतियों के अनुसार मन्त्रों के कण्ठस्थीकरण पर ही ध्यान न देकर वेद-मन्त्रों के अर्थज्ञान पर भी ध्यानाकर्षण आवश्यक है क्योंकि वेदाध्ययन की दोनों प्रकार की विधियों का अनुशीलन आवश्यक है।

पिछली संहिता तथा ब्राह्मण युग में वैदिक सभ्यता का प्रसार पूर्व के प्रदेशों की ओर होने लगा। इस प्रसार के विषय में एक प्राचीन सुन्दर आख्यायिका शतपथ ब्राह्मण १.४.१.१० में दी गई है। विदेघ माथव ने वैश्वानर अग्नि को मुख में धारण किया था। राहूगण गोतम जो पुरोहित थे- दर्शपूर्णमास यज्ञ के सामिधेनी मन्त्रों से अग्नि को दीप्त करने के लिये (समिद्धतम अग्नि में ही होम कार्य किया जाता है) अग्नि का आवाहन किया। ज्यों ही सामिधेनी के मन्त्रों से आवाहन (अग्नि) का प्रारम्भ किया, एक दो मन्त्रों से अग्नि प्रकट नहीं हो पाया। पर **"घृतस्नवीमहे"** मन्त्र से जब अग्नि को बुलाया तब घृत शब्द के उच्चारण से अग्नि प्रज्वलित होकर विदेघ माथव के मुख से पृथ्वी पर प्रकट हुआ। उस समय राहूगण गोतम और विदेघ माथव दोनों पवित्र सरस्वती नदी के तट पर रहते थे। उस वैश्वानर ने पूर्व की ओर चलते हुए पृथ्वी की समस्त नदियों को जला डाला। उन प्रदेशों को पावनतम बनाया। गोतम राहूगण और माथव विदेघ वैश्वानर

अग्नि का अनुसरण कर रहे थे। वैश्वानर उत्तर गिरि से दौड़ती आती हुई सदानीरा (नारायणी / बड़ी गण्डक) को नहीं जला पाया। अग्नि के द्वारा दग्ध न होने के कारण प्राचीन समय में ब्राह्मण उस नदी को पार कर नहीं जाते थे, पर अब वैश्वानर अग्नि के आ जाने से ब्राह्मणों के निवासयोग्य वह भूमि हो गई। माथव विदेघ ने वैश्वानर से पूछा, मैं कहाँ निवास करूँ। वैश्वानर ने कहा - यहाँ से पूर्व दिशा में। राहूगण गोतम ने उस नदी के पश्चिम में अपना आश्रम बनाया। आज भी अधिकतर गौतम ब्राह्मण नदी के पश्चिम तरफ पश्चिमी छपरा, देवरिया गोरखपुर आदि स्थानों पर निवास करते पाये जाते हैं। वैश्वानर के आने के समय वह सदानीरा नदी कोशल और विदेह राज्यों की सीमा थी। पूर्व में विदेघ माथव के निवास के कारण मिथि और मिथिल राजा द्वारा मिथिला नगरी बसाई गई। यह कथानक बड़े ही ऐतिहासिक महत्त्व का है। वैश्वानर अग्नि वैदिक यागानुष्ठान या वैदिक धर्म का प्रतिनिधि है। उसका प्रथम स्थान था सरस्वती मण्डल और वहीं से उसने पूर्व के देशों में प्रस्थान किया। इस आर्य-सभ्यता के विस्तार में विदेघ माथव तथा उनके पुरोहित गोतम राहूगण का विशेष योग प्रकट हो रहा है। ये गोतम राहूगण कोई सामान्य ऋषि न थे। शतपथ (१.४.१।१०) में स्पष्टतः ये माथव के पुरोहित बतलाये गये (तस्य गोतमो राहूगण ऋषिः पुरोहित आस) परन्तु ऋग्वेद में इनके द्वारा दृष्ट अनेक सूक्त प्रथम मण्डल के १.७४ सूक्त से १.९३ सूक्त तथा नवम मण्डल ९.३१ तथा ६७ एवं दशम मण्डल १०.२३ तक ये कुल २१४ मन्त्रों के द्रष्टा हैं। इनमें विशेषतः अग्नि, इन्द्र, मरुद्गण, सोम, विश्वेदेव, उषाः अग्नीषोमौ, अश्विनौ और वायु की प्रार्थनायें की गई हैं। एक मन्त्र में इन्होंने अग्नि की स्तुति के प्रसङ्ग में अपने नाम का भी उल्लेख किया है –

अवोचाम रहूगणा अग्नये मधुमद् वचः।
द्युम्नैरभि प्रणो नुमः॥ (ऋ.सं.१.७८.६)

शतपथ ११.४.३.२० ने इन्हें विदेह के महाराज जनक तथा ऋषि याज्ञवल्क्य का भी समकालीन बताया है पर ध्यान रहे, निमि के यज्ञ

कराने वाले गोतम जो ४९ जनक राजाओं से पहले के हैं। याज्ञवल्क्य और किसी अन्य जनक राजा का समकालीन बताना विचारणीय विषय संप्रस्तुत करता है। इस विषय पर काल-निर्धारण के समय तथ्य प्रस्तुत हो सकता है। अथर्व संहिता में भी इनके नाम का उल्लेख दो बार किया गया है (अथर्व ४.२९.९। १८.३.१६)।

अत: इन निर्देशों के आधार पर हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि पूर्वी प्रान्तों में आर्य-धर्म का विस्तार करने वाले राहूगण गोतम ऋषि उस काल के एक पूजनीय तथा माननीय महर्षि निर्विवाद रूप में प्रमाणित होते हैं।

राहूगण गोतम की विशेषता- अङ्गिरा ऋषि से रहूगण ऋषि हुए। उनके पुत्र गोतम राहूगण हुए। उनके - गोतम के सम्बन्ध में कुछ विशेष महत्त्वपूर्ण वेदोपबृंहण संबंधी योगदान यहाँ दिया जा रहा है -

८५ मन्त्र ५६६ मन्त्रों के द्रष्टा

गोतम ऋषि का वेदों में नाम - नोधा के मन्त्रों में ४ बार, गोतम ऋषि के मन्त्र में ८ बार, कक्षीवान् के मन्त्रों में २ बार, वामदेव ऋषि के मन्त्रों में २ बार, पुन: नोधा के अष्टम मण्डल में १ बार, अथर्ववेद में २ बार, इस प्रकार वेदों में १९ बार गोतम के नाम आये हैं। उपर्युक्त १८ नाम तो ऋग्वेद में गोतम रूप में है पर अथर्ववेद में एक नाम गौतम है जो भरद्वाज और वामदेव के साथ आया है। यहाँ गोतम पद से मूल ऋषि का बोध होता है और गोतमास:, गोतमेभि:, गोतमा: ये पद गोतम वंश में उन्पन्न मन्त्रद्रष्टा गोतमों के हैं जिसमें नोधा और वामदेव भी गौतम नाम से व्यवहृत होते हैं। गौतम वंश में

उत्पन्न मन्त्र-द्रष्टा ऋषि भी गौतम नाम से कहे गये हैं। ये सभी नाम ऋग्वेद और अथर्ववेद के हैं।

ब्राह्मण ग्रन्थ में गोतम का नाम- शतपथ ब्राह्मण में एक ऐतिहासिक आख्यान उद्धृत है जिससे गोतम की प्राचीनता परिलक्षित होती है और भारतीय सांस्कृतिक इतिहास में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान प्रतीत होता है। वैश्वानर को पूर्व प्रदेश में लानेवाला गोतम जैसा अन्य एक ऋषि उपलब्ध नहीं होता जिसने माथव विदेघ का पुरोहित होना स्वीकार कर सरस्वती नदी से अर्थात् पाञ्चाल से सदानीरा नदी या मिथिला तक याज्ञिक विकास और सांस्कृतिक एवं क्षेत्रीय विकास कर इतने भूभाग को यज्ञ का आधार बना कर संस्कृतिसम्पन्न बनाया हो। इसे इस रूप में भी स्पष्ट किया जा सकता है कि सरस्वती नदी के तट पर जो प्राचीन समय में विशेष यज्ञीय सत्र सम्पन्न किये जाते थे उन वैदिक यज्ञों का प्रसार अतरणयोग्य और अपावन प्रदेश तक यज्ञीय वैश्वानर को पहुँचाकर यज्ञीय प्रदेश मान्य कराया। यह ध्यान देने योग्य है कि जिस समय सरस्वती नदी से सदानीरा (बड़ी गण्डकी या नारायणी) का उत्तरी पूर्वी भूभाग यज्ञीय दृष्टि से चम्पारण और विहार अपावन माना जाता था वह क्षेत्र यज्ञीय दृष्टिकोण से अग्राह्य था। वह नदी तैरने के अयोग्य मानी जाती थी। गोतम ने वैश्वानर को लाकर उस भूभाग को यज्ञार्थ पावन कराया। उसे समय ब्राह्मण उसमें तैरते नहीं थे क्योंकि वह वैश्वानर के द्वारा पवित्र नहीं की गई थी।

तां ह स्म तां पुरा ब्राह्मणा न तरन्त्यनतिदग्धाग्निना वैश्वानरेणेति॥

१.४.१.१४ श.ब्रा.॥

मथुपुत्र माथव विदेह प्रथमतः सरस्वती नदी के तट पर ही थे। वैश्वानर के अनुगमन करते गोतम और माथव, विहार के पूर्वीय क्षेत्र सदानीरा के पूर्व में पहुँचकर मार्ग के या पृथिवी की समस्त नदियों के जला देने के बाद सदानीरा को न जला पाने के कारण सदानीरा से पूर्व राजा माथव विदेघ के निवास-हेतु स्थान वैश्वानर ने बताया। गोतम ने सदानीरा से पश्चिम अपना आश्रम बनाया। यह वैदिक

यज्ञाग्नि का सांस्कृतिक क्षेत्र में पश्चिम से पूर्व तक प्रसार करने का अपूर्व महत्त्वपूर्ण योगदान भारतीय वैदिक याज्ञिक प्रदेश में वैश्वानर को लाना गोतम की अभूतपूर्व सफलता है। यह वैदिक आख्यान गोतम ऋषि के प्राक्तन प्रभाव को द्योतित करता है। इससे स्पष्ट होता है कि गोतम ऋषि ने वैदिक यज्ञों का प्रचार-प्रसार भारत के एक बड़े भू भाग में सर्वप्रथम किया था। पञ्चाल, उत्तर प्रदेश, बिहार के कुछ भाग तक श्रौताग्नि को लाकर पवित्रतम प्रदेश निरूपित करने का मुख्य श्रेय महर्षि गोतम को जाता है। शुक्ल यजुर्वेद (माध्यन्दिन संहिता) के व्याख्यानात्मक शतपथ ब्राह्मण में निहित यह आख्यायिका दर्शपूर्णमास यज्ञ में अग्नि को समिद्ध-संदीप्त करने हेतु सामिधेनी मन्त्रों के उच्चारण अनुवचन के संबंध में कही गई है। निस्संदेह गोतम महर्षि अपने वैदिक योगदान से देश के समुद्धारक, विशाल भूभाग में वैदिक यज्ञाग्नि के प्रचारक और गर्हित क्षेत्र के पावनकर्ता प्रमाणित होते हैं।

सर्वप्रथम गोतम पुरोहित रूप में सरस्वती नदी के तट पर माथव विदेध के समय रहते थे। पश्चात् उन्होंने अपना आश्रम सदानीरा नदी के पूर्व माथव विदेध के आवास बना लेने पर स्वयं सदानीरा के पश्चिम में बनाया।

गोतम राहूगण मित्रविन्दा इष्टि यज्ञ के ज्ञाता थे जिसे संपन्न करने पर राष्ट्र देने वाली या राष्ट्र को अधिकार में रखने वाली इस इष्टि से सभी मित्र बन जाते है। राष्ट्र को वह प्राप्त कर लेता है तथा अपमृत्यु को दूरकर समस्त आयु प्राप्त करता है, जो इस इष्टि से यज्ञ करता है। राजा जनक ने याज्ञवल्क्य को सहस्र मुद्रा देने को कहा कि यदि कोई जानता हो। इस राष्ट्रविन्दा को तो जानने वाले गोतम ही थे।

चतुर्वेद-ज्ञाता गोतम- इनके द्वारा दृष्ट २१४ मन्त्र ऋग्वेद और अथर्ववेद के हैं। सामवेद की गौतमी शाखा और संहिता गोतम की है। सामों में ''गोतमस्य पर्कः'' यह उल्लेख प्राप्त होता है। यजुर्वेद-दर्शपूर्णमास इष्टि के वे कर्णधार और यज्ञ के प्रचारक और ज्ञाता हैं। अग्निष्टोम की रचना की थी – प्रातर्गोतमस्य चतुरुत्तरः स्तोमो भवति श.ब्रा. १४.५.१.१।

गोतम महर्षिदृष्ट मन्त्र में वैज्ञानिकता

१. **इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः। जघान नवतीर्नव।** ऋ. १.८४.१३। अर्थ - जिसके सामने शत्रु नहीं ठहर सकता उस इन्द्र ने दध्यङ् की अस्थियों के वज्र से निन्यानवे वृत्र (शत्रुओं) को मारा। दधीचि ऋषि की हड्डियों से त्वष्टा द्वारा इन्द्र का वज्र बनाना और उससे वृत्र का मारना यह प्राचीन विज्ञान सबसे पहले महर्षि गोतम को विदित हुआ।

२. **गोतम राहूगण सबसे पहले तारों के प्रेक्षक** - बृहस्पति ग्रह की पहचान गोतम राहूगण को हुई तथा पुष्य नक्षत्र का ज्ञान भी उन्हें हुआ -

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्ताक्ष्यों अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु।

ऋ. १.८९.६

इस गोतमदृष्ट मन्त्र में ४ नक्षत्रों के स्वामी ४ देवताओं की स्तुति कर सत्ताइस नक्षत्रों, उनके स्वामियों, १२ राशियों, ग्रहों के द्वारा पूरे खगोल-मण्डल में स्थित तारकाओं से स्वस्ति, शोभन, अस्तित्व, कल्याण की प्रार्थना की गई है। चित्रा नक्षत्र के स्वामी इन्द्र, रेवती नक्षत्र के स्वामी पूषन्, श्रवण नक्षत्र के स्वामी विष्णु के स्थान पर अरिष्टनेमि-गरुड, पुष्य नक्षत्र के स्वामी बृहस्पति इन ४ चारों की स्तुति से पूरा खगोल अनुकूल हो जाता है। इस ज्योतिष तत्त्व के वैज्ञानिक स्वरूप को जानने का श्रेय गोतम को है।

गोतम का विविध ज्ञान- गौतम धर्मसूत्र, गौतम पितृमेध सूत्र, गौतमी शिक्षा, गौतम स्मृति, गौतम न्यायशास्त्र के कर्ता प्रमाणित होते हैं। इनके मत श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र प्रातिशाख्य आदि ग्रन्थों में हैं। पर ये सभी ग्रन्थ मूल राहूगण गोतम के हैं या पौराणिक गौतम के इस पर विशेष विचार करना आवश्यक है।

संक्षेप में गोतम (राहूगण) का परिचय- नाम का अर्थ - अतिशय दूर देश में जाकर धर्म प्रचार करने वाला गोतम है। मरुतों ने प्यासे गोतम के पास कुआँ लाकर उपस्थित किया जहाँ गोतम थे। मरुतों ने आहाव में जल भर दिया। नोधा ऋषि और वामदेव ऋषि ने स्वयं को गोतमपुत्र बताया है। वामदेव ने मन्त्र में कहा है कि यह ज्ञान मुझे गोतम (पिता) से प्राप्त हुआ। सरस्वती नदी से चम्पारण्य विहार तक यज्ञ-प्रचार करने वाली आख्यायिका पूर्व में सविस्तर वर्णित है। यह गोतम का ऐतिहासिक आख्यान भारत की प्राचीन संस्कृति तथा इतिहास का प्रचारक है। गोतम वैदिक धर्म के प्रचारक मित्रविन्दा इष्टि के ज्ञाता थे जिसके द्वारा राष्ट्र में परस्पर मित्रता की प्राप्ति होती है। ये अग्निष्टोम यज्ञ के स्तोमों के ज्ञाता थे। सामवेद की गौतमी संहिता के प्रवचनकर्ता थे। गौतमी शाखा से संबद्ध समस्त ग्रन्थ ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, शिक्षा, श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र, शुल्बसूत्र, प्रातिशाख्य, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष इन १३ ग्रन्थों के ज्ञाता प्रमाणित होते हैं। पर इनमें से कुछ ही ग्रन्थ आज उपलब्ध होते हैं। उनका विस्तृत विवरण आगे किया जायगा। आज हमारे प्रत्येक संस्कार अनुष्ठान में, धार्मिक प्रक्रियाओं में प्रयुक्त होने वाले स्वस्त्ययन मन्त्र गोतम के ही हैं। गोतम तारों के प्रेक्षक, नक्षत्रों के प्रथम ज्ञाता वैज्ञानिक ऋषि सिद्ध होते हैं जिसका विवरण यथास्थल प्राप्त होगा। दधीचि ऋषि की अस्थि से वज्र बनाने का ज्ञान सर्वप्रथम गोतम ने प्राप्त किया।

२. **अङ्गिरा**- ऋषि गोतम के पूर्वज पितामह स्थानीय हैं। अङ्गारों से अङ्गिरा प्रकट हुये। अङ्गिरस एक गण है जिसमें ७ ऋषि हैं। उनमें अङ्गिरा प्रधान है। ये देव भी हैं और इनके द्वारा छह मन्त्र दृष्ट हैं। अङ्गिरा ने जल में प्रविष्ट अग्नि का पता लगाया। नष्ट होने पर पुनः वन में खोजते हुए वनस्पति में आश्रित अग्नि को खोज लिया। इसी कारण अग्नि काष्ठमय अरणियों से उत्पन्न होता है। पणि जाति द्वारा अपहृत गायों के पदचिह्नों के ज्ञाता होने के कारण अङ्गिरस ने गायों की प्राप्ति कर ली। इनकी देवविषयक स्तुति सत्यफल वाली हुई। उनके स्तोत्र से अन्धकार विदीर्ण हुआ। अङ्गिरसों की प्रार्थना की जाती

है कि वे मुझे मेधा प्रदान करें। द्वादश आदित्य तथा ७ अङ्गिरस में अनेक यज्ञ करने में प्रतिस्पर्धा हुई थी। अङ्गिरस ने यज्ञ द्वारा बल नामक असुर को नष्ट किया। इन ऋषियों ने ऋत के द्वारा द्युलोक में सूर्य की स्थापना की तथा पृथ्वी को प्रथित किया अथवा फैलाया। मित्रावरुण देवों ने अङ्गिरा की रक्षा की थी – इस दृष्टान्त से कीथ और मैकडानल का मत धराशायी हो जाता है कि अङ्गिरा नामक ऋषि ही नहीं था अस्तित्व में।[१]

अङ्गिरस का तप उत्कृष्ट था। दर्शपूर्णमास यज्ञ में पुरोडाश पकाने के लिये कहा गया है कि पुरोडाश तुम भृगु और अङ्गिरस के तप से पक जाओ। आदित्य और अङ्गिरस् दोनों ने स्वर्ग जाने के लिये प्रतिद्वन्द्विता की। अङ्गिरस ने नाभानेदिष्ठ को धन दिया।[२] अङ्गिरसों ने स्वर्ग जाते समय जल में दीक्षा और तप को प्रविष्ट कर दिया जिससे पुण्डरीक (कमल) की उत्पत्ति हुई। हरि वर्ण ने साम स्तोत्र से पीछा करते हुये राक्षसों को नष्ट किया।

जैमिनीय ब्राह्मण में कहा गया है कि तुम प्रातः अन्धकार दूर होने पर सविता के रूप में रहते हो। अपररात्र या रात्रि के द्वितीय भाग में अङ्गिरा के रूप में रहते हो। अङ्गिरा को एक यज्ञविशेष अहः की विधि इन्द्र ने दी थी। यह अङ्गिरा के अस्तित्व का परिचायक है। जो इस अहः यज्ञविशेष का शंसन करता है वह इस लोक में समस्त आयु प्राप्त कर अमृतत्व की प्राप्ति करता है तथा स्वर्गलोक में क्षयरहित वास करता है।

अङ्गिरा परा और अपरा के ज्ञाता हैं। मुण्डकोपनिषद् के प्रवक्ता अङ्गिरा तीन रूप में उत्पन्न हए- आत्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा।

३. नोधा – नोधा ऋषि गोतम राहूगण के पुत्र हैं। इनके नाम की व्युत्पत्ति है – नूतन स्तोत्र धारण करने के कारण नवनं नूतनं स्तोत्रं दधातीति नोधाः। ८५ मन्त्रों का दर्शन इन्होंने किया। उषा की स्तुति में

---

१. यथास्थान विवरण देखें।

२. देखें-सम्बद्ध आख्यायिका।

कथन है (ऋ. १।१२४।४) उषा सबके द्वारा पास में ही देखी जाती है जैसे सूर्य का वक्ष:स्थानीय किरणसमूह प्रकाशमान देखा जाता है। जैसे श्वेत जलचर अपने वक्ष: स्थान को प्रकाशित करता हुआ दिखाई देता है, जैसे नोधा ऋषि ने देवताओं की स्तुति के बहाने से अनेक प्रकार के मन्त्रों से अपने अभिलषित का आविष्कार किया उसी प्रकार इस उषा ने भी स्वकीय लोकप्रिय तेज को आविष्कृत किया। जिस प्रकार माता सोते हुये पुत्रों को उष:काल में जगा देती है उसी तरह यह उषा भुवन रूपी गृह में समस्त प्राणियों को जगाती हुई देखी जाती है। इन्होंने इन्द्र मरुत् आदि देवों के विपुल पराक्रमों की चर्चा मन्त्रों में की है। मन्त्रों के एकत्र संग्रह से इनके वैशिष्ट्य का पता लग सकता है।

४. **वामदेव**- गोतम राहूगण के पुत्र वामदेव को गर्भावस्था में ही ज्ञान प्राप्त हो गया था। इन्होंने ऋग्वेद के चतुर्थ मण्डल के ५६६ मन्त्रों का दर्शन किया है। गोतमों में एक मात्र ऋषि हैं जिन्होंने गोतमों द्वारा दृष्ट १४७५ मन्त्रों में से अकेले सब गोतमों से अधिक मन्त्रों का दर्शन किया है।

वामदेव नाम की व्युत्पत्ति- सभी देवताओं के मध्य वन्दनीय भजनीय तथा सेवनीय है। देवताओं में वाम है, द्योतक है, तत्त्व के विषय में जिसे बोध हुआ, ज्ञान प्राप्त किया है। गर्भावस्था में ज्ञान प्राप्त कर लेने के कारण स्वान्त: सर्वात्मना प्राप्त होने से ऐसा दर्शन दिया कि मैं ही मनु हुआ था, मैं ही सूर्य, मैं ही कक्षीवान् ऋषि हूँ। मुझे ही उशना रूप में देखें।

एक मन्त्र में वामदेव के वैशिष्ट्य का वर्णन किया है। उस मन्त्र में वामदेव कहते हैं कि मैंने गर्भ में ही रहकर इन अग्नि, वायु और आदित्य आदि के समस्त जन्मों को जान लिया था। पूर्वकाल में कभी वामदेव ने इन भू: भुव: स्व: इत्यादि लोकों की सृष्टि कर उनकी प्राप्ति के उपाय को सोचकर संपात सूक्तों से उन लोकों को प्राप्त कर लिया।

बृहद्देवता के अनुसार इन्द्र ने युद्ध के लिये इन वामदेव को बुलाया। वहाँ दस दिन तक रात दिन युद्ध में वामदेव ने इन्द्र को जीत लिया।

५. **बृहदुक्थ**- बृहत् महान् उक्थ स्तोत्र जिसके होते हैं वह बृहदुक्थ कहलाता है। इनका नाम ऋग्वेद में ३ बार और माध्यन्दिन संहिता में एक बार उपलब्ध होता है। यह वामदेव के ४ पुत्रों में अधिक ख्याति प्राप्त होता है।

यह ऋषि एक मन्त्र में कह रहा है कि जिस तरह मनुष्य नौका के द्वारा जल को पार कर जाते हैं, कल्याण के द्वारा, स्वस्ति और क्षेम के द्वारा समस्त दु:खों को पार कर जाते हैं उसी प्रकार यह ऋषि बृहदुक्थ अपनी प्रजा अपनी सन्तति मृतवाजी नामक पुत्र को अपने महत्त्व से अवर अग्नि आदि देवताओं में स्थापित कर रहा है तथा पर-दिव्य सूर्य आदि में स्थापित किया। ऐसा ऋषि अथवा स्वयं को परोक्ष रूप में कह रहा है।

ऐतरेय ब्राह्मण से यह विदित होता है कि बृहदुक्थ ऋषि ने दुर्मुख पाञ्चाल को ऐन्द्र महाभिषेक का प्रवचन किया। इस कारण दुर्मुख राजा ने विद्या के द्वारा महाभिषेक के ज्ञान से समस्त दिशाओं में जाकर समस्त पृथिवी को जीतते हुए पृथिवी का भ्रमण किया।

६. **दीर्घतमा औचथ्य मामतेय**- ऋषियों के समूह में यह विशिष्ट स्थान रखता है। वैज्ञानिक परिवेश में यह गोतम राहूगण की तरह विशिष्टता प्राप्त कर रहा है। यह दीर्घ जीवन में तो सब को पीछे छोड़ गया है। इनके सामान्य परिचय के बाद अन्तिम भाग में विशेष परिचय देना समीचीन होगा।

माता तथा पिता- मन्त्रद्रष्टा दीर्घतमा अपने लिये औचथ पद का प्रयोग करता है। सायण भी उचथ और उचथ्य को एक ही मानते हैं। अत: पिता उचथ है और माता ममता।

ये सदा मामतेय इस पद से जाने जाते हैं। दशयुग पर्यन्त इस ममता पुत्र दीर्घतमा की आयु थी, जीवन था। यह दशम युग में वृद्ध

हुआ। यह तथ्य ऋक् संहिता और शांखायन आरण्यक से प्रमाणित होता है। यह दीर्घतमा ऋषि ऋक् संहिता प्रथम मण्डल के १४० वें सूक्त से १६४ वें सूक्त तक २४२ मन्त्रों का द्रष्टा है। यह विपुल मन्त्रद्रष्टा ऋषियों में वामदेव के ५६६ मन्त्रों के बाद द्वितीय स्थान पर आता है। इतना ही नहीं दीर्घतमा का अस्यवामीय सूक्त विज्ञान के क्षेत्र में महती उपलब्धि का सूचक है।

अश्विनौ देवों ने इस दीर्घतमा ऋषि की अनेक संकटों में रक्षा की है इसका प्रमाण ऋग्वेदीय मन्त्रों से प्राप्त होता है।

आख्यान- वृद्धावस्था के कारण जीर्ण शरीर वाले जन्म से अन्धे ममता पुत्र दीर्घतमा का आदेश न मानने वाले सेवकों ने जला डालने के लिये इन्हें अग्नि में फेंक दिया। ऋषि ने अश्विनौ की स्तुति की। फलस्वरूप इनकी रक्षा हुई। इस अग्नि में प्रक्षेप से भी मरते न देख पुनः जल में बहा दिया। डूबते ऋषि अश्विनौ की स्तुति करने से पुनः रक्षित हो गये। इस प्रकार ऋषि को अवध्य समझकर त्रैतन नामक दास ने इनके शिर और वक्षः स्थल को छील डाला। इस गम्भीर घात से भी अश्विनौ ने इनका पालन किया। अग्नि की स्तुति कर इन्होंने चक्षुः (नेत्र) प्राप्त किया, यह ऋग्वेद से ज्ञात होता है।

एक आख्यान जो वेद में नहीं है और बृहद्देवता में है तथा जो विश्वसनीय नहीं है, सायण भाष्य में उपलब्ध है। उसमें इनके अन्धत्व का कारण और उसकी निवृत्ति की बात कही गई है। वह यह है कि ममता के गर्भ में दीर्घतमा जीव रूप में थे। बृहस्पति ने ममता के साथ दुराचरण करना चाहा। गर्भस्थ जीव ने उस बृहस्पति को रोक दिया। इस पर बृहस्पति ने शाप दिया कि तुम अन्धे हो जाओ। अन्धे उत्पन्न होने के बाद अग्निदेव की स्तुति कर अन्धत्व दूर किया। इस आख्यान पर विश्वास नहीं किया जा सकता क्योंकि यह वेद में नहीं है। बृहद्देवता में कल्पित कथा है। दीर्घतमा गोतम गोत्र में एक प्रवर है।

वैज्ञानिक उपलब्धि- अस्य वामीय सूक्त में एक मन्त्र है।

सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा।
त्रिनाभिचक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनानि तस्थुः।

जब समस्त संसार में दिन, मास, वर्ष की संख्या निश्चित न हो सकी थी। बहुत दिनों पहले दीर्घतमा ने संवत्सर चक्र में ३० दिन १२ मास ३ ऋतु ३६० दिन ३६० रात्रि तक का ज्ञान प्राप्त किया था। इस संवत्सर चक्र का प्रथम संवत्सर प्रवर्तक संवत्सर का संस्थापक दीर्घतमा ऋषि प्रमाणित हुये। **भारतीय विज्ञान के कर्णधार** नामक ग्रन्थ में डॉ. सत्यप्रकाश ने दीर्घतमा को इस उपलब्धि का श्रेय प्रदान किया है।

७. **कक्षीवान् (दैर्घतमस) औशिज** - इस ऋषि की परम ख्याति जगत् में हुई। वामदेव ऋषि ने ऋग्वेद चतुर्थ मण्डल में एक मन्त्र में स्पष्ट रूप से कहा है कि मैं ही मनु, मैं ही सूर्य, मैं ही कक्षीवान् तथा उशना ऋषि हुआ। वामदेव को गर्भावस्था में ही ज्ञान प्राप्त हुआ था। अतः उन्होंने सर्वात्मा के रूप में मनु, सूर्य उशना और कक्षीवान् का नाम लिया है। कक्षीवान् उशिज का पुत्र होने से औशिज नाम से प्रसिद्ध हुआ। दीर्घतमस् के पुत्र होने से दैर्घतमस नाम पड़ा। वहाँ यह विचारणीय है कि जो कक्षीवान् मन्त्रद्रष्टा ऋषि है, वह प्रख्यातनामा कक्षीवान् औशिज है। दीर्घतमस् पुत्र नहीं। दीर्घतमस्-पुत्र कक्षीवान् राजा है। इस विषय में एक आख्यायिका दी जा रही है जो बृहद्देवता की है, वेद की नहीं है, अतः विश्वास के योग्य नहीं है तथापि पठनीय है -

अङ्गराज कभी अपनी स्त्रियों के साथ जलक्रीडा कर रहा था। उस समय दीर्घतमा नामक ऋषि को, अपनी स्त्री, पुत्र, भृत्य आदि के द्वारा अत्यंत दुर्बल होने के कारण कुछ भी नहीं कर सकते हैं- इस द्वेषबुद्धि से मध्यगङ्गा में फेंक दिया गया। वह ऋषि किसी नाव से अङ्गराज के क्रीडास्थल पर आ पहुँचे। उस राजा ने ऋषि को सर्वज्ञ जानकर नौका से उतारकर इस प्रकार कहा- हे भगवन्! मुझे पुत्र नहीं

है, यह महिषी है। इसमें किसी पुत्र को उत्पन्न कीजिये। ऋषि ने स्वीकार किया। महिषी ने उशिक् नामक दासी को भेज दिया। उस सर्वज्ञ ऋषि द्वारा पवित्र जल से अभ्युक्षित होने पर वह ऋषि पत्नी हो गई। उससे कक्षीवान् नामक पुत्र हुआ। वही राजा का पुत्र हुआ। उन्होंने अनेक प्रकार के राजसूय आदि यज्ञ सम्पन्न किये। उस राजा को यज्ञों द्वारा सन्तुष्ट इन्द्र ने वृचया नामक तरूणी स्त्री प्रदान की। इस कथा के अनुसार कक्षीवान् राजा प्रतीत होता है। वह कक्षीवान् ऋषि तो अन्य है जो मन्त्रद्रष्टा है। वह उशिज ऋषि का पुत्र है। वहाँ कोई उशिक् या उशिङ् नाम की कोई दासी नहीं है।

वहाँ उशिज नाम का ऋषि श्रौत प्रवराध्याय में है जिसका कक्षीवान् नाम का प्रख्यात पुत्र हुआ। अतः दैर्घतमस कक्षीवान् राजा अन्य है। मन्त्रद्रष्टा ऋषि कक्षीवान् औशिज है। मन्त्र में **कक्षीवन्तं य औशिजः** (मा.सं.३.२८,ऋ. १.१८.१) कहा गया है। सोम ने शत वर्षीय कक्षीवान् के लिये गौ प्रेरित किया। हे ब्रह्मणस्पते सोम का अभिषव कर, इन्द्रादि को देने वाले को ऐसा प्रकाशित कीजिये जैसे कक्षीवान् देवताओं में प्रसिद्ध था। इस प्रमाण से कक्षीवान् की विशेषता प्रकट होती है। दो औशिज प्रतीत होते हैं। कक्षीवान् औशिज और दीर्घश्रवा औशिज।[१] कक्षीवान् ऋषिसमूह में मन्त्रों के दर्शन की दृष्टि में मन्त्र-संख्या के आधार पर चतुर्थ स्थान (गोतम गोत्रीय १८ मन्त्रद्रष्टा ऋषियों में) है। ये १६० मन्त्रों के द्रष्टा हैं।

इस प्रकाण्ड विद्वान् तेजस्वी ऋषि-पुत्र को देखकर भावयव्य के पुत्र स्वनय ने इसे देवतुल्य समझकर दश कन्याएँ प्रदान कीं क्योंकि यह कक्षीवान् अङ्गिरस था। कन्याओं के साथ रथ, वृषभ, अश्व, निष्क आदि स्वर्ण मुद्राएँ प्रदान कीं जिसे कक्षीवान् ने स्वनय द्वारा दिये गये धन, सौ निष्क, शत घोड़े, ६० हजार गायों का समूह अपने पिता को दे दिया।

---

१. विशेष विवरण परिच्छेद में द्रष्टव्य।

८. **अरुण औपवेशिगौतमः**- इस परिच्छेद में वाजश्रवा, कुश्रिवाजश्रवस, उपवेश, उपवेशि के बाद अरुण औपवेशि नामक आचार्य का नाम आता है। उपवेशि का पुत्र यह अरुण नामक आचार्य है। इनका मत तै.सं. के सोम प्रकरण में, उपांशु ग्रह प्रकरण में काठक सं. के धिष्ण्य प्रकरण में समस्त मतों से ऊपर व्यक्त किया गया है। शतपथ ब्राह्मण से ज्ञात होता है कि पांच आचार्य सत्ययज्ञ पौलुषि, महाशाल जाबाल, बुडिल आश्वतराश्वि, इन्द्रद्युम्न भाल्लवेय, जन शार्कराक्ष्य, इस अरुण के पास वैश्वानर विद्या-प्राप्ति के लिये पहुँचे थे। इससे यह प्रमाणित होता है कि इन पांच आचार्यों में यह श्रेष्ठ था। ये सभी वैश्वानर विद्या-प्राप्ति के लिये मिलकर अश्वपति कैकेय के पास गये। उन सभी को- अश्वपति कहते हैं, आप सभी अनूचान हैं, अनूचानपुत्र हैं यह क्या, कि आप सभी यहाँ उपस्थित हुये हैं। सभी ने कहा आप वैश्वानर विद्या जानते हैं अत: इस समय, उस विद्या का उपदेश कीजिये। अश्वपति ने उन्हें वैश्वानर विद्या का उपदेश दिया। इस से यह विदित होता है कि अरुण और उसके पिता उपवेशि दोनों अनूचान अर्थात् अनुवचन करने में समर्थ थे। अश्वपति ने इन्हें गोतम से संबोधित किया। यह अश्वपति के समकालिक था। जब ये वृद्ध हुये तो ज्ञाति के लोगों ने अग्नि आधान के लिये इनसे कहा, तो अरुण ने कहा - आहिताग्नि असत्य भाषण न करे। अत: सत्यवदन ही श्रेयस्कर है। वाणी पर नियन्त्रण रखने वाला वाचंयम जन ही कल्याण प्राप्त करता है। इस प्रकार यह अरुण औपवेशि बहुत से यज्ञों के विषय में प्रवक्ता प्रमाणित होते हैं।

९. **आरुणि उद्दालक**- यह भारत का सर्वोच्च याज्ञिक और दार्शनिक विद्वान् है जिसकी विद्वत्ता की ख्याति पूरे भारत में थी। प्रसिद्ध अरुण औपवेशि अनूचान के सन्तान (अपत्य) होने के कारण आरुणि कहे गये हैं। इनके गुरु और पिता अरुण ही थे।

आरुणि की जन्मभूमि- आरुणि कुरुपञ्चाल देश के निवासी थे। प्रोति कौसुरुबिन्दि के गुरु थे। यह अपने पिता अरुण के शिष्य थे। साथ ही पतञ्चल काप्य के भी शिष्य थे। वाजसनेय याज्ञवल्क्य तथा

कौषीतकि के गुरु थे। शतपथ ब्राह्मण में १६ स्थलों पर आरुणि के नाम आये हैं जहाँ इसके यज्ञविषय के सभी अन्य मतों के अतिक्रान्त करने वाले इनके मत हैं। ब्रह्मा संबंधी चयन में या प्रकथनों में इनका प्रखर पाण्डित्य परिलक्षित होता है।

आरुणि भारत में अतिप्रसिद्ध विद्वान् था। उस समय उसके समान कोई प्रतिष्ठित विद्वान् नहीं था। एक यज्ञ में उदीच्य देश (कश्मीर) में वह ब्रह्मा के रूप में वृत होकर आदृत हुआ। भारत के सर्वश्रेष्ठ विद्वान् को ही ब्रह्मा के पद पर प्रतिष्ठित किया जाता था। श्रेष्ठ विद्वान् के लिये एक स्वर्णमय निष्क निश्चित था। भारत में यह परम्परा पूर्व से ही चलती थी। आरुणि की विद्वत्ता समझकर उदीच्य ब्राह्मण भीत थे। उन उदीच्य ब्राह्मणों ने आरुणि के प्रति ईर्ष्या करते हुये आपस में कहा – यह ब्रह्मा आरुणि पञ्चाल देश का निवासी है तो यदि निष्क का आधा भाग हम लोगों को न दे तो ब्रह्मोद्य में ब्रह्म संबंधी शास्त्रार्थ में इनकी पराजय करा दी जाय। उदीच्य ब्राह्मणों ने स्वैदायन नामक एक विद्वान् को शास्त्रार्थ करने के लिये तैयार किया। उन लोगों ने स्वैदायन से कहा - उद्दालक वीर के साथ ब्रह्मोद्य (शास्त्रार्थ) करना है जहाँ हम लोगों की ही विजय हो। स्वैदायन ने उन उदीच्य ब्राह्मणों से कहा- आप लोग यहीं रुक जायँ मैं वहाँ जाकर जान लूं। उद्दालक के प्रति जाकर कहा। तब स्वैदायन ने पूछना प्रारम्भ किया। उद्दालक ने निष्क स्वैदायन को देकर कहा-स्वैदायन, तुम अनूचान हो, अनुवचन करने में समर्थ हो। सभी लोग सुवर्ण सुवर्णविद् को देते हैं अर्थात् तुम वेदविद् हो, तुम इस निष्क के अधिकारी हो। स्वैदायन उस निष्क को वहीं उद्दालक के पास रख कर वहाँ से चल पड़ा। स्वैदायन के आ जाने पर ब्राह्मणों ने पूछा, कैसा गौतम का पुत्र है। स्वैदायन ने कहा – जैसे ब्रह्मा ब्रह्मपुत्र होता है वैसे ही वह है। शिर गिर जायगा जो इनके साथ विवाद करेगा। वे ब्राह्मण उद्दालक की विशेषता (विशेष वैदुष्य) सुनकर अपने अपने स्थान पर चले गये। इस आख्यायिका से यह प्रकट होता है कि उद्दालक स्वयं विद्वान् होते हुए अन्य विद्वान् के लिये आदर देता है। उस समय अपना अस्तित्व छोड़कर आने वाले विद्वान् की स्तुति करता है। इस उदाहरण से

उद्दालक की नम्रता व्यक्त होती है। इस आख्यायिका का यह आशय है कि आरुणि न केवल कुरुपाञ्चाल देश में तथा उदीच्य देश कश्मीर में अद्वितीय विद्वान थे अपितु पूर्ण भारत के उत्कृष्ट विद्वान् थे। गोपथ ब्राह्मण में भी ऐसी ही आख्यायिका हैं।

उद्दालक ने अपने शिष्य याज्ञवल्क्य को समस्त विद्या और ज्ञान का उपदेश दिया और कहा जो कोई इसको शुष्क स्थाणु (वृक्ष) पर इससे सींच दे तो शाखायें उत्पन्न हो जायें, पत्ते उग आयें। आरुणि का मत है कि जिस क्षत्रिय को इन व्याहृतियों से अभिषिक्त कर देते हैं वह क्षत्रिय समस्त आयु को प्राप्त करने में समर्थ होता है, अपनी विजय से समस्त शत्रुओं को आक्रान्त कर संपूर्ण भोग प्राप्त करता है।

आरुणि मधुविद्या, वैश्वानर विद्या के जानकार थे। ऋग्वेद की औद्दालकि शाखा है। यही आरुणेय शाखा भी कही गई है।

१०. **श्वेतकेतु औद्दालकि आरुणेय**- यह आरुणि का पुत्र था अत: आरुणेय कहा जाता है। आरुणि उद्दालक का पुत्र होने से यह औद्दालकि भी कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण में इनके ८ मत हैं। जिनके द्वारा इनके यज्ञ प्रवक्तृत्व का पता लगता है। श्वेतकेतु की दृष्टि में त्रयी विद्या का शेष मधु है अत: मधुभक्षण की अनुमति देता है। इससे यह मौलिक विचारों का प्रवर्तक सिद्ध होता है।

श्वेतकेतु के प्रति पिता उद्दालक कहते हैं, हे श्वेतकेतो! ब्रह्मचर्य नियम से रहो। सौम्य! हमारे कुल का गोतमगोत्रीय व्यक्ति बिना वेद पढ़े ब्रह्मबन्धु या ब्राह्मण नहीं रहता। वह श्वेतकेतु बारह वर्षीय गुरु के पास गया। जब तक २४ वर्ष का हुआ चारों वेदों का अध्ययन कर लिया। उस समय की शिक्षा-प्रणाली अत्युत्तम थी। उद्दालक ने श्वेतकेतु से कहा - जगत् का मूल अणु भाव है। यह सत्य सब कुछ है। वह आत्मा है, वही तुम हो। यह जो अणिमा है उस अणिमा से यक्त सब कुछ सत्य है। वही आत्मा है, वही तुम हो श्वेतकेतो!। ऐसे दश स्थलों पर आरुणि ने श्वेतकेतो संबोधन करते हुए तत्त्व कथन किया है।

श्वेतकेतु श्रुतर्षि था। वह कर्मफल शेष रहने के कारण श्रुतर्षि हुआ। इस श्वेतकेतु ने अपनी विशेषता के कारण ऋषित्व प्राप्त किया। अत्यधिक वेदाध्ययन के कारण श्वेतकेतु नियम करता है कि दारसङ्ग्रह करने पर भी अर्थात् विवाहित होने पर भी प्रति वर्ष दो-दो महीने समाहित होकर आचार्य कुल में निवास करे पुनः श्रुति प्राप्त करने की इच्छा से। इस योग से मैं अधिक से अधिक श्रुत का ज्ञान पूर्वकाल में ही करूँ। कौषीतकि ब्राह्मण में कौषीतकियों के कल्प में सदः में १७ ऋत्विज् यज्ञों में होने वाली त्रुटियों के निरीक्षण संबन्धी विवाद में श्वेतकेतु प्रामाणिक अधिकारी विद्वान् माना गया था। शांखायन श्रौत सूत्र में एक आख्यायिका है। जल जातूकर्ण्य काशिकोशल तथा विदेहों का पुरोहित हुआ। यह देखकर श्वेतकेतु ने अपने पिता आरुणि की आलोचना की कि उसके याज्ञिक ज्ञान से अन्य लोग लाभान्वित हो रहे हैं और यशस्वी हो रहे हैं। उनके पिता ने ऐसा कहने से उसका निवारण किया। उन्होंने कहा, मैंने यज्ञविद्या में प्रवीणता प्राप्त की है। अतः इस विषय में अन्य ब्राह्मणों के साथ विचार-विमर्श करना ही मेरे जीवन का लक्ष्य है। इससे ज्ञात होता है कि आरुणि अपने ज्ञान का प्रचार सर्वत्र करता था। इनकी यह नम्रता है जो स्वैदायन के समक्ष इन्होंने प्रदर्शित की।

११. **नचिकेता** - तैत्तिरीय ब्राह्मण के सुप्रसिद्ध आख्यान में इनका उल्लेख है जहाँ वह वाजश्रवा का पुत्र तथा गोतम कहा गया है। कठोपनिषद् में यह मुख्य रूप से वर्णित है। वहाँ १८ नाम नचिकेता के आये हैं। यम का और नचिकेता का संवाद पूर्ण रूप से कठोपनिषत् में है। वहाँ इनके पिता का नाम वाजश्रवा आरुणि औद्दालकि है। जब यह वाजश्रवा का पुत्र है तो आरुणि का नहीं हो सकता। यदि आरुणि का है तो औद्दालकि का नहीं होगा। संभवतः इसका पिता श्वेतकेतु औद्दालकि अथवा कुसुरुबिन्द औद्दालकि अथवा उद्दालक पुत्र कोई अन्य औद्दालकि नाम इसके पिता का हो सकता है।

विशेष- यह नचिकेता सर्वप्रथम ऋषिपुत्र मानव है जिसने प्रसन्न यमराज के द्वारा दिये जाने वाले अनेक प्रलोभनों से प्रभावित न होकर मृत्युविद्या का रहस्य यम द्वारा प्राप्त किया।

१२. **घोषा काक्षीवती**- यह स्त्रियों के मध्य में प्रथम ब्रह्मवादिनी ऋषिका है। यह प्रसिद्ध कक्षीवान् ऋषि की पुत्री है। इसके द्वारा दृष्ट ऋग्वेद के २८ मन्त्र दशम मण्डल के हैं। काक्षीवती घोषा ने रोग वश ६० वर्ष तक पिता के घर में निवास किया। उसने स्तुति की कि जैसे मेरे पिता कक्षीवान् ने स्तुति करके यौवन, आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य समस्त प्राणियों के हित करने के लिये वित्त प्राप्त किया। मुझे भी मन्त्र दो, मैं स्तुति करूँगी। दो सूक्तों द्वारा स्वदृष्ट मन्त्रों से ऋ. के. १०.३९ तथा १०.४० सूक्तों से स्तुति कर सन्तुष्ट अश्विनौ द्वारा पति तथा पुत्र प्राप्त सुप्रसिद्ध ब्रह्मवादिनी जगत् में विख्यात हुई।

१३. **उशना**- ने इन्द्र के बल को तीक्ष्ण किया। तेजस्वी बनाया। कवि पुत्र उशना असुरों को दूर करने के लिये इन्द्र का सहायक हुआ। उशना ने इन्द्र के लिये मत्त करने वाले वज्र को प्रदान किया जिससे इन्द्र वृत्रासुर को मारने में समर्थ हुआ। उशना जिस प्रकार इन्द्र की स्तुति करता है उसी प्रकार स्तुति करने वाले यजमान को इन्द्र मुक्त करे। वामदेव कहते हैं - मैं ही प्रसिद्ध उशना था। उशना ऋषि ऋग्वेद के ३३ मन्त्रों के द्रष्टा हैं। उशना अतीन्द्रियद्रष्टा मेधावी, अग्रगामी मनुष्यों के लिये व्यापक भासित होने वाले धीमान् हैं। कवित्व के कारण उशना ने गायों का अन्तर्हित दूध प्राप्त किया। इस प्रकार दुग्ध विज्ञान के आविष्क़ारक सर्वप्रथम उशना सिद्ध हुये। उशना ने सम्यक् ज्ञान का प्रवचन किया। इन प्रमाणों से प्रमाणित होता है कि उशना इन्द्र का सखा, इन्द्र की सहायता कर रहा था। इन्द्र ने वज्र का तक्षण किया, छील-छाल कर तीक्ष्ण किया। इन्द्र के लिये बल दिया या सेना प्रदान की। ऋग्वेद में देवताओं का असुरों के साथ विरोध नहीं था क्योंकि यदि विरोध और वैमनस्य होता तो उशना काव्य इन्द्र की सहायता नहीं करता। अपितु वह असुरों की सहायता करता। तैत्तिरीय संहिता तथा अन्य श्रौतसूत्रों में उशना काव्य असुरों का

पुरोहित था। इसका असुरों के साथ सहयोग पश्चात्कालिक है। इन्द्र ने उशना को धन दिया। उशना ने गायों का अन्वेषण किया। उक्थ के शंसन में ऋग्वेदीय मन्त्रों के प्रकथन में इसी उशना की उपमा दी जाती है। मित्र और वरुण देवों ने पहले उशना की रक्षा की थी। वह साम गायन करता था। वाराह संबंधी अन्त्य साम पुरुष व्रत में है। यह वैष्णवी नाम की संहिता है। इस संहिता का उपयोग करते हुए विष्णु को प्रसन्न करता है। श्री कृष्ण का कथन है कि मैं कवियों में उशना कवि हूँ –

कवीनामुशना कविः गीता १०.३०। उशना गोतम गोत्र का एक प्रवर है।

१४. **अयास्य आङ्गिरस**– यह गोतम गोत्र के त्रिप्रवर में पठित है। अयास्य ने उद्गीथ की उपासना की।

अयास्य शब्द का अर्थ– प्रयास, प्रयत्न का अभाव हो वह अयास्य नाम का ऋषि है जिसके बिना प्रयास के सब सिद्धियाँ या मनोरथ पूरे होते हैं। यह अयास्य शब्द का अर्थ हुआ।

परिचय– इनके पिता अङ्गिरा ऋषि थे। यह अयास्य ऋषि असहाय दूसरों की सहायता से रहित होकर अन्य लोगों के असदृश अर्थात् अनुपमेय अकेले ही समस्त प्राथमिक प्रजाओं का अतिक्रमण कर बढ़ रहे थे। वर्धिष्णु थे। सामवेद के उद्गाता थे।

ऐतरेय ब्राह्मण में हरिशचन्द्र के राजसूय यज्ञ में अयास्य ऋषि उद्गाता ऋत्विक् के रूप में कार्यरत थे। यह ज्ञात रहे, गोतमों की सामवेद की गौतमी शाखा थी अतः उद्गाता के रूप में अधिकतर गोतम ही थे। अयास्य ने ही देवों के द्वारा भेजे जाने पर मनुष्य लोक में मनुष्यों में सप्त होतृयज्ञ का प्रवर्तन किया। अयास्य आङ्गिरस ने आदित्य दीक्षितों का अन्न भक्षण करने से रोग ग्रस्त हो जाने पर दो सामों का दर्शन कर रोगों को दूर किया। कोई भी व्यक्ति उन दोनों आयास्य सामों से स्तुति करता हुआ रोगों को दूर कर सकता है। एक समय इस लोक में अवर्षण हुआ। अयास्य ने आयास्य साम से धरती

पर वर्षण किया। कोई भी व्यक्ति इन सामों से स्तुति करता हुआ वर्षा कर सकता है। इस लोक में अन्न के अभाव हो जाने पर अयास्य ने आयास्य सामों से स्तुति कर अन्न आदि गिराया। कोई भी व्यक्ति आयास्य से स्तुति करता हुआ पर्याप्त मात्रा में अन्नाद्य प्राप्त कर लेता है। अयास्यदृष्ट आयास्य साम की प्रतिष्ठा अथवा स्थापना के लिये तिरश्चीन नामक निधन का उच्चारण (गायन) किया जाता है। इस अयास्य ने शर्यात मानव का उद्गाता होकर उत्तर दिशा में बैठकर उद्गायन उच्च स्वर से लोकोत्तर गायन साम मन्त्रों से किया। उसने प्राण से देवताओं को देवलोक में धारण किया। अपान से मनुष्यों को मनुष्य लोक में स्थापित रखा। व्यान से पितरों को पितृलोक में स्थित किया। हिङ्कार रूपी वज्र से इस लोक से असुरों को हटाया। वह प्राणस्वरूप अयास्य ही है। प्राणस्वरूप होकर उसने उपर्युक्त कार्य सम्पादन किया।

इस भूमिका में ५२ गोतमों में से प्रसिद्ध १४ गोतमों का सूक्ष्म परिचय न देकर स्थूल परिचय दिया गया। सूक्ष्म परिचय विस्तारपूर्वक उन ऋषियों के परिच्छेदों में दिया गया है। उन ऋषियों के विषय में कुछ पढ़ने की जिज्ञासा पहले से हो जाये, इस दृष्टि से भूमिका को सविस्तर प्रतिपादित किया गया। यह बात अवश्य है कि पूरा परिचय तथा विस्तृत विवरण उन परिच्छेदों में ही प्रमाणसहित प्राप्त होगा। सामान्य परिचय देना आवश्यक प्रतीत हुआ। जिज्ञासा-उत्कण्ठा, जागृत हो तदर्थ यह भूमिका उपबृंहित हुई।

श्री वेदपुरुषाय नमः

प्रथम परिच्छेद

बावन गोतम ऋषियों का वेदों में योगदान

वेदमंत्र द्रष्टा गोतम राहूगण – वेदों में सर्वत्र गोतम का नाम प्राप्त होता है, पुराणों में गौतम। व्याकरण की दृष्टि से भी गौतम का मूल शब्द गोतम है – **गोतमस्यापत्यं पुमान् गौतमः** अर्थात् गोतम का पुरुष सन्तान (पुत्र) गौतम होगा। अतः गौतम गोत्र प्रवर्तक और मूल पुरुष गोतम है। सर्वप्रथम यह गोतम वेदों में "राहुगण गोतम" विशेषण से विख्यात है। ऋग्वेद के एक मन्त्र से इनके पुत्र वामदेव का पता लगा, जिनके द्वारा दृष्ट मन्त्र में पिता का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त हुआ। वैदिक वाङ्मय के आलोडन से ५२ गोतम गोत्रज ऋषियों और यज्ञ प्रवर्तक आचार्यों का पता लगा जिनमें १८ ऋषि मन्त्रद्रष्टा हैं और ३४ यज्ञप्रवर्तक आचार्य।

गोतम के पिता रहूगण हैं पर वे "रहूगण आङ्गिरस" कहे जाते हैं अर्थात् रहूगण के पिता अङ्गिरा ऋषि हैं। अङ्गिरा ऋषि वेदों में विशिष्ट स्थान रखने वाले ब्रह्मा के पुत्र हैं। अतः उस अङ्गिरा का सविस्तार वर्णन गोतम ऋषि के परिचय के पश्चात् किया गया है। प्रारम्भ में रहूगण ऋषि (गोतम पिता) का परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

रहूगण ऋषि का परिचय

शतपथ ब्राह्मण से विदित है कि राहूगण गोतम रहूगण के पुत्र हैं। स्वयं गोतम भी अपने को "रहूगणा वयम्" रहूगण पुत्र मानते हैं। ऋग्वेदीय मन्त्र में गोतम ऋषि ने अग्नि की स्तुति करते हुए रहूगण

पुत्र माना है[१]। उक्त मन्त्र गोतमदृष्ट है। सर्वानुक्रम के अनुसार रहूगण का पैतृक नाम रहूगण आङ्गिरस है। अतः यह सिद्ध होता है कि रहूगण के पिता अङ्गिरा थे। अङ्गिरा ऋषि का परिचय गोतम-परिचय के बाद दिया गया है। राहूगण गोतम ने अग्नि की मधुमद् वचन द्वारा द्योतमान स्तोत्रों से स्तुति की है।

रहूगण ऋषि ने १२ मन्त्रों का दर्शन किया है[२]।

मूल पुरुष गोतम ऋषि ही गोत्र प्रवर्तक ऋषि है। यद्यपि ये पुराणों में तथा महाभारत आदि इतिहास ग्रन्थों में गौतम कहे गये हैं पर वेदों में सर्वत्र गोतम नाम से ही व्यवहृत होते हैं।

गोतम नाम की व्युत्पत्ति - सायण (१३१५ ई. से १३८८ ई.) ने ऋग्वेदीय मन्त्रों की व्याख्या करते समय गोतम शब्द का निर्वचन किया है– गोतमेभिः (गन्तृतमैः) अर्थात् गोतमः गन्तृतमः, अतिशयेन गन्ता–इति गोतमः। अतिशय गमन करने वाला गोतम नाम से जाना जाता है।

शतपथ ब्राह्मण से यह विज्ञात होता है कि इस गोतम राहूगण ने सरस्वती नदी से सदानीरा (नारायणी / बड़ी गण्डकी) नदी तक वैदिक यज्ञों का प्रचार किया। इस आख्यायिका से यह प्रतीत होता है। इसका आशय यह है कि सारस्वत प्रदेश से पूर्व प्रदेशों में आर्यधर्म का प्रचार इसी गोतम ने किया। इस ऋषि से प्राचीन कोई भी ऋषि मध्यप्रदेश, कोशल, विदेह आदि देशों में नहीं था जो वहाँ यज्ञ कराने वाला हो। इस ऋषि की प्राचीनता तो इसी तथ्य से प्रमाणित होती है कि इसके पुत्र वामदेव ने ऋग्वेद के चतुर्थ मण्डल के ५६६ मन्त्रों का दर्शन किया।[३]

---

१ अवोचाम रहूगणा अग्नये मधुमद्वचः। द्युम्नैरभि प्रणोनुमः। ऋ.सं. १.७८.५

२ सातवलेकर-गोतम ऋषि का दर्शन-भूमिका-पृष्ठ १

३ ऋ.सं. १.६३.९.

अतः श्रुति (वेद) के महत्त्व का विस्तार करते हुये यज्ञ प्रचार करने हेतु अतिशय दूर देश में जाने के कारण गोतम नाम ऋग्वेदादि ग्रन्थों में सार्थक नाम ग्रहण करता है[१]।

गोतम नाम ऋग्वेद में सत्रह बार आया है तथा अथर्ववेद में दो बार उपलब्ध होता है। वे प्रसंग और अर्थ इस प्रकार हैं –

१. **गोतमासः** – गोतम पुत्र नोधा ऋषि एक मन्त्र में स्तुति करते हैं। स्तोता ऋषि के एक वचन होने पर भी अपने लिये बहुवचन का प्रयोग किया गया है – हे अग्ने! धनों की रक्षा करने वाले तुम्हारी अनेक स्तोत्रों से स्तुति करते हैं। धन अर्जित कर अग्नि प्रातः काल शीघ्र आवें[२]।

२. **गोतमासः** – इस मन्त्र में भी नोधा (गोतम पुत्र) स्तुति करते हैं – हे इन्द्र! गोतम गोत्र में उत्पन्न ऋषियों ने तुम्हारे लिये स्तुति मन्त्र किये हैं। इन गोतम स्तोताओं में अनेक प्रकार के धन स्थापित कीजिये। प्रातः काल धन प्राप्त किये हुए इन्द्र शीघ्र आइये[३]।

३. **गोतमासः** मरुतों ने प्यासे गोतम के पास कुआँ पहुँचाया। प्यासे गोतम द्वारा मरुतों की स्तुति करने पर गोतम हेतु कुआँ लाकर दिया। कोई ऋषि कहता है– हे गोतम! आप लोगों का यह शुभ दिन है कि जल आ गया। इसके द्वारा कार्य कीजिए। आप लोगों के पीने के लिये जो मरुतों ने कुआँ ला दिया वह आप लोगों की स्तुति की ही महत्ता है[४]।

---

१. श.ब्रा. १.४.१.१०-१८

२. तं त्वा वयं पतिमग्ने रयीणां प्रशंसामो मतिभिर्गोतमासः। ऋ.सं. १.६०.५

३. एवा ते हारियोजना सुवृक्तीन्द्र ब्रह्माणि गोतमासो अक्रन्।। ऋ.सं. १.६१.१६

४. अहानि गृध्राः पर्या व आगुरिमां धियं वार्कार्यां च देवीम्।
ब्रह्म कृण्वन्तो गोतमासो अर्कैरूर्ध्वं नुनुद्र उत्सधिं पिबध्यै।। ऋ.सं. १.८८.४

४. **गोतम** - हे सूक्तद्रष्टा धन की इच्छा करते हुये गोतम तीक्ष्ण ज्वाला वाले अग्नि के लिये शुद्ध वाणी युत स्तुति संपन्न कीजिये[१]।

५. **गोतम** - हे इन्द्र! गोतम पुत्र गोतम नोधा ने तुम्हारे लिये नूतन स्तोत्र का विधान किया। अतः धनसहित इन्द्र प्रातः शीघ्र यहां आये। इस मन्त्र में नोधा ऋषि भी गोतम कहे गये हैं[२]।

६. **गोतम** :- धन प्राप्ति की कामना से गोतम स्तुति द्वारा जिस अग्नि की परिचर्या (सेवा) करते हैं। हे अग्ने हम लोग आपकी विभिन्न स्तोत्रों से पुनः पुनः स्तुति करते हैं[३]।

७. **गोतम** :- हे मरुद् देवता! तुम्हारे लिये जिस स्तोत्र से गोतम ने स्तुति की, वह स्तोत्र सर्वोत्कृष्ट है। ऐसा सब के द्वारा जाना जाता है[४]।

८. **गोतम!** हे अश्विनों तुम्हें गोतम पुरुमीढ और अत्रि हवि लेकर अपनी रक्षा के लिये बुलाते हैं। अतः आप इनके पास आइये[५]।

९. **गोतमेभि** :- हे इन्द्र! यज्ञ प्रचार हेतु गमनशील (सदा यात्रा करने वाले) गोतम ऋषि द्वारा तुम्हारे स्तोत्र किये गये। अतः हमें अनेक प्रकार के अन्न दीजिये। प्रातः काल धनयुक्त इन्द्र हमारी रक्षा-हेतु आयें[६]।

१०. **गोतमेभि** :- गोतम ऋषियों द्वारा अग्नि की स्तुति की गई। उस अग्नि ने गोतमों को सोमपान कराया[७]।

---

१. प्र पूता स्तिग्मशोचिषे वाचो गोतमाग्नये। भरस्व सुम्नयुर्गिरः।। ऋ.सं.१.७९.१०

२. सनायते गोतम इन्द्र नव्यमतक्षत् ब्रह्म हरियोजनाय। ऋ.सं. १.६२.१३।

३. तमुत्वा गोतमो गिरा रायस्कामो दुवस्यति। द्युम्नैरभि प्र णोनुमः। ऋ.सं.१.७८.२

४. एतत्यन्नयोजनमचेति सस्वर्ह यन्मरुतो गोतमो वः। ऋ.सं. १.८८.५.

५. युवां गोतमः पुरुमील्हो अत्रिदस्रा हवतेऽवसे हविष्मान्। ऋ.सं. १.१८३.५

६. अकारि त इन्द्र गोतमेभिर्ब्रह्माण्योक्ता नमसा हरिभ्याम्। ऋ.सं. १.६३.९

७. एवाग्निर्गोतमेभिर्ऋतावा विप्रेभिरस्तोष्ट जातवेदाः। ऋ.सं. १.७७.५

११. **गोतमेभि** :- द्युलोक की पुत्री उषा की गोतमों द्वारा स्तुति की जाती है। हे उषः आप हमारे द्वारा स्तुति प्राप्त कर पुत्रपौत्रयुक्त तथा नर एवं अश्वयुक्त अन्न प्रदान कीजिये[१]।

१२. **गोतमा** :- हे अग्ने! गोतम ऋषि ने तुम्हारी जैसी स्तुति की। हम उसी प्रकार आप की स्तुति करते हैं[२]।

१३. **गोतमा** :- हे इन्द्र तुम्हारी स्तुति वहन करने वाले गोतम ऋषि स्तोत्रों से तुम्हारी अभिवृद्धि करते हैं। आप इन गोतमों में वीरत्वदायक पुत्रपौत्रयुक्त अन्न (या यश) स्थापित कीजिये[३]।

१४. **गोतमा** :- हे इन्द्र वृत्रहनन कर्म रूपी बल से तुम शत्रुओं के संहारक हो तथा कर्मरूपी शत्रुओं के आक्रोश से उत्पन्न समर्थ बल से समस्त प्राणियों को आक्रान्त करते हो। आपकी स्तुति करने वाला अपनी रक्षा के लिये अभिमुख करता है। आपको नोधः प्रभृति गोतमपुत्र गोतम ने अपने यज्ञ में प्रादुर्भूत किया। ऐसे तुम्हें यह स्तोता मन्त्रों द्वारा (प्रस्तुत या) आवृत्त करता है[४]।

१५. **गोतमस्य** :- मरु भूमि में वर्तमान गोतम ऋषि के समीप अश्विनौ ने कुआँ पहुँचा दिया। उस कूप से प्यासे गोतम के पीने के लिये जल निकला[५]।

१६. **गोतमाय** :- मरुतों ने जिस दिशा में ऋषि थे उसी दिशा में कूप प्रेरित किया। इस प्रकार ऋषि के आश्रम में कूप स्थापित कर

---

१. भास्वती नेत्री सूनृतानां दिवः स्तवे दुहिता गोतमेभिः। ऋ.सं. १.९२.७

२. अभि त्वा गोतमा गिरा जातवेदो विचर्षणे। द्युम्नैरभि प्र णोनुमः। ऋ.सं. १.७८.१

३. अवीवृधंत गोतमा इन्द्र त्वे स्तोम वाहसः। ऐषु धा वीरवद्यशः। ऋ.सं. ४.३२.१२

४. आत्वायमर्क ऊतये ववर्तति यं गोतमा अजीजनन्। ऋ.सं. ८.८८.४

५. क्षरन्नापो न पायनाय राये सहस्राय तृष्यते गोतमस्य। ऋ.सं. १.११६.९

प्यासे गोतम के लिये उत्स (जलाधार स्थल) को कूएँ से भर दिया अथवा सींच दिया, आहाव में जल भर दिया[१]।

१७. **गोतमात्** :- वामदेव ऋषि स्वदृष्ट मन्त्र में कहते हैं-हे अग्ने तुम्हारे लिए किये गये स्तोत्रों से जो बन्धुता उत्पन्न हुई उससे महान् राक्षसों को नष्ट करता हूँ। ऐसा स्तोत्रात्मक वचन मुझे मेरे पिता गोतम से मुझे प्राप्त हुआ[२]।

१८. **गोतमम्** :- हे मित्रावरुण आप दोनों ने गोतम ऋषि की रक्षा की थी। आप दोनों पाप से मुझे (भी) मुक्त कीजिये[३]।

१९. **गौतम वामदेव** :- पर यह नाम साक्षाद् गोतम का नहीं है, अपितु वामदेव का नाम प्रतीत होता है[४]।

यद्यपि बहुत से मन्त्रों में बहुवचन में गोतम ऋषि के नाम आये हैं तथापि पूजा के लिये बहुवचन है। क्योंकि मन्त्रद्रष्टा एक ही ऋषि है। एक मन्त्र में यद्यपि नोधा भी गोतम कहे गये हैं। पर सर्वत्र बहुत से मन्त्रों से राहूगण गोतम ही कहे गये हैं। सायण ने भी अपने भाष्य में सर्वत्र राहूगण गोतम मानकर ही व्याख्या की है। नोधा तो गोतम-पुत्र हैं।

गोतम की ऐतिहासिकता तथा यज्ञ-प्रचारणा – सरस्वती नदी से पूर्वनारायणी (बड़ी गण्डक) नदी तक सर्वप्रथम पूर्व अपावन प्रदेशों में उनके यज्ञप्रचार के विषय में शतपथ ब्राह्मण में एक आख्यायिका है :-

---

१. जिह्मं नुनुद्रेऽवतं तया दिशासिञ्चन्नुत्सं गोतमाय तृष्णजे। ऋ.सं. १.८५.११

२. महो रुजामि बन्धुता वचोभिस्तन्मा पितुर्गोतमादन्वियाय। ऋ.सं. ४.४.११

३. यौ गोतमममवथ:। अथर्ववेद शौ.सं. ४.२९.६

४. भरद्वाज गौतम वामदेव. मृडता नः अथ. सं. १८.३.१६

दर्शपूर्णमास यज्ञ में अग्नि को (सामिधेनी मन्त्रों द्वारा दीप्त) किया जाता है। सामिधेनी मन्त्रों में घृत पद की विशेषता वर्णन करने के प्रसङ्ग में आख्यायिका है :-

मथु पुत्र माथव विदेघ नामक राजा ने वैश्वानर अग्नि को मुख में धारण कर लिया था, उसके पुरोहित राहूगण गोतम थे। गोतम के द्वारा यज्ञीय अग्नि की आवश्यकता होने पर राजा को बुलाने पर राजा ने उत्तर नहीं दिया। इस कारण कि मुख से अग्नि बाहर न निकल जाये। गोतम ने अग्नि को बुलाने के लिये **"वीतिहोत्रं"** मन्त्र का उच्चारण किया। उस विदेघ ने उत्तर नहीं दिया। तत्पश्चात् **"तन्त्वा घृतस्नवीमहे"** इस ऋक् का उच्चारण किया। वह अग्नि मन्त्र में स्थित घृत शब्द के उच्चारण के समय में ही माथव के मुख के पास से ऊपर प्रज्वलित हो गया। माथव उस अग्नि को धारण करने में ज्वाला की अधिकता के कारण समर्थ नहीं हुआ। माथव के मुख से अग्नि पृथ्वी पर आ गया। माथव अग्नि के ताप की शान्ति के लिये सरस्वती नदी में निमग्न हो गया[१]।

वैश्वानर अग्नि ने उस सरस्वती नदी के स्थान से प्रारम्भ कर पूर्व दिशा में जलाता हुआ इस समस्त पृथ्वी को व्याप्त कर लिया। माथव और गोतम दोनों ने उस जलाते हुये अग्नि का अनुगमन किया। वह जलाता हुआ अग्नि पृथ्वी में जितनी नदियाँ थीं सब को सोख लिया अर्थात् जला डाला।

उत्तर गिरि (हिमालय) से आती हुई सदानीरा नदी नारायणी (बड़ी गण्डक) को नहीं जला पाया। अतः ब्राह्मण उस नदी में तैरते नहीं थे – स्पर्श नहीं करते थे। क्योंकि वह नदी वैश्वानर द्वारा न जलाई गई, न पवित्र की गई थी। इस कारण से इस सदानीरा के स्थान से पूर्व देश अक्षेत्रतर था अर्थात् शोभन क्षेत्र नहीं था क्योंकि वैश्वानर के द्वारा वह स्थल अनास्वादित था अर्थात् हविर्ग्रहण न करने से वह अभुक्त था। अतः वह स्थान अपवित्र माना गया। उस स्थान

---

१. श.ब्रा. १.४.१०-१९

पर इस समय ब्राह्मणों ने यज्ञानुष्ठान के द्वारा उस स्थान को अग्नि के द्वारा आस्वादित करा दिया। इस कारण से वह सदानीरा ग्रीष्म में अधिक जल होने के कारण अधिक कुपित हो जाती है। क्योंकि वैश्वानर के द्वारा वह नदी जलाई नहीं गई।

माथव ने अग्नि से कहा मैं कहां निवास करूँ। ऐसा पूछने पर अग्नि ने कहा - इस सदानीरा (नारायणी - बूढ़ी गण्डक) से प्राचीन भुवन अर्थात् प्राची पूर्व दिशा की भूमि ही तुम्हारा निवास हो। माथव का निवास सदानीरा से पूर्व प्रदेश बना। इसी कारण सदानीरा (बड़ी गण्डक) कोसल और विदेह देशों की सीमा बनी क्योंकि माथव के लिये उस अग्नि ने उस प्रदेश को दिया। इस कारण से विदेह देश भी माथव कहे गये हैं। गोतम ने माथव से पूछा, उत्तर क्यों नहीं दिया। माथव ने कहा, अग्नि मेरे मुख में था, उसका पतन न हो जाये, इसलिये मैंने तुम्हारा वचन नहीं सुना।

कैसे और क्यों सुन लिया? इस प्रश्न पर माथव ने कहा, घृत शब्द के उच्चारण से ही अग्नि जलने लगा। अत: मैं उस अग्नि को धारण करने में असमर्थ हो गया।

इस आख्यायिका का रहस्य :- गोतम वैश्वानर अग्नि अर्थात् यज्ञ अग्नि का सरस्वती नदी के तट से पूर्व दिशा बिहार में ले जाने वाला प्रमाणित हुआ है। अत: गोतम ऋषि ने सदानीरा नदी के पश्चिम तट पर अपना निवास (आश्रम) बनाया। माथव विदेध ने अपना निवास सदानीरा नदी से पूर्व दिशा में बनाया। यज्ञिय अग्नि के अन्यत्र ले जाने का यही रहस्य हो सकता है कि यज्ञों का जो प्रचार साररस्वत प्रदेश में था उसका प्रचार पूर्व देश में भी हो जाये। सदानीरा के पूर्व भाग में यज्ञिय अग्नि का वैसा प्रचार नहीं था जैसा सरस्वती नदी से सदानीरा नदी तक था। वैश्वानर द्वारा दग्ध अर्थात् पवित्र किये हुये स्थान पर गोतम ने निवास किया। आज सदानीरा नदी के पश्चिम दिशा में ही गोतम वंशीय और गोतम गोत्रीय ब्राह्मणों का मूल स्थान है। वहाँ से ही देवरिया गोरखपुर मण्डलों में उनकी मूल वसति इस समय उपलब्ध होती है। इस आख्यायिका से यह निर्देश मिलता है कि

पूर्व काल में राहूगण गोतम सरस्वती नदी के तट पर थे क्योंकि वे विदेघ राजा के पुरोहित थे। उसके साथ वहाँ से आते हुये सदानीरा नदी के पश्चिम भाग में वसति (निवास, आश्रम) बनायी।

गोतम - वैदिक धर्म के प्रचारक – प्राचीन काल में अनेक सत्र सरस्वती नदी के दोनों तटों पर होते थे। गोतम ने दर्शपूर्णमास यज्ञ में सामिधेनी मन्त्रों के अनुवचन में पुरोहित के रूप में यज्ञ संपन्न किया। उस समय सरस्वती का पूर्व पश्चिम क्षेत्र वैदिक धर्म, आर्य धर्म या ब्राह्मण धर्म का उद्भावक प्रचारक्षेत्र था। आद्य ऋषि गोतम ने यज्ञ का प्रचार वहाँ से पूर्व दिशा में किया। अतः वैदिक संस्कृति के उन्नायक और प्रचारक होने का पूर्ण श्रेय महर्षि गोतम को जाता है।

गोतम का मन्त्रद्रष्टा के रूप में योगदान – ऋक् संहिता के प्रथम मण्डल के ७४ वें सूक्त से लेकर ९३ से सूक्त तक समस्त ऋङ् मन्त्रों का द्रष्टा यह ऋषि है[१]। नवम मण्डल के ९ मन्त्रों का[२] तथा दशम मण्डल के एंक मन्त्र का दर्शन किया है[३]। इस प्रकार २१४ मन्त्रों के द्रष्टा यह गोतम ऋषि हैं[४]। अथर्ववेद के ३२ मन्त्रों का द्रष्टा है। पर वे मन्त्र ऋक् संहिता के अन्तर्गत समाम्नात (पठित) हैं।

अतः ओल्डेनबर्ग महाशय का यह कथन निरस्त हो गया कि ऋग्वेद के किसी भी स्थल पर इस गोतम का इस आशय में नाम नहीं आया है कि किसी सूक्त का वैयक्तिक रूप से द्रष्टा प्रतीत हो।

गोतम का विविध ज्ञान – गोतमों का अङ्गिरा ऋषियों के साथ महान् सम्बन्ध था क्योंकि उनके नाम सूक्तों में प्रचुररूप में समुपलब्ध होते हैं[५]। इस गोतम ऋषि का पैतृक नाम राहूगण था, यह ऋग्वेद और शतपथब्राह्मण से विदित होता है। शतपथब्राह्मण के एक स्थल से यह

---

१. ऋ.सं. १.७४.९३ सूक्त।

२. ऋ.सं.मं. ९ सूक्त ३१ तथा ६७

३. ऋ.सं.मं. १० सू. २३

४. अथर्व.काण्डे विंशे सूक्तानि १, १३, १५, ४१, ५६, ६३, १०९

५. ऋ.सं. १.६२.१, ७१.२, ७४.५, ७५.२, ७८.३, ४.२.५, १६.५

ज्ञात होता है कि सर्वप्रथम "**मित्रविन्दा**" इष्टि का परिज्ञान गोतम को हुआ[१]। यह इनकी विशेषता है। शतपथब्राह्मण से यह विदित होता है कि गोतम का "**चतुरुत्तर स्तोम**" होता है[२]। इससे यह सुस्पष्ट है कि गोतम अग्निष्टोम यज्ञ-विधान के स्रष्टा थे। उसी ब्राह्मण में **प्राणा वा ऋषयः** ऋषि प्राण रूप में हैं – इस प्रसङ्ग में गोतम का नाम आया है[३]।

विशेष – दर्शपूर्णमास यज्ञ अर्थात् दर्शेष्टि और पूर्णमासेष्टि के ज्ञाता मित्रविन्दा इष्टि के ज्ञाता और अग्निष्टोम के ज्ञाता होने से वैदिक यज्ञीय विधि-विधानों के ज्ञाता थे। सोमयज्ञ की ७ संस्थाओं में अग्निष्टोम यज्ञ एक संस्था है।

गोतम की संहिता तथा शाखा – गोतम की एक वेद की शाखा थी। सामवेद में अवशिष्ट नव शाखाओं के मध्य में एक राणायनीय शाखा है जिसके ९ भेद होते हैं। उन भेदों में "**गौतमाः**" एक शाखा है ऐसा चरणव्यूह नाम ग्रन्थ से ज्ञात होता है[४]।

इस शाखा की कोई संहिता थी या नहीं यह विदित नहीं है[५]। पर शतपथब्राह्मण में गोतम ने स्तोत्रों का दर्शन किया ऐसा प्रमाण उपलब्ध होता है जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि इनकी साम संहिता थी[६]। इसके शाखाविषयक ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। गौतम धर्म सूत्र, गौतम पितृमेध सूत्र अधुना उपलब्ध होते हैं। गौतमी शिक्षा भी शिक्षा-संग्रह में विद्यमान है।

पं. भगवद्दत अपने ग्रन्थ "वैदिक वाङ्मय का इतिहास" में संभावना करते हैं कि यत्न करने पर इस शाखा के अन्य ग्रन्थ भी

---

१. श.ब्रा. ११.४.३.२०
२. श.ब्रा. १४.५.१.१
३. श.ब्रा. १४.५.२.६
४. चरणव्यूह पृ. ४३ सामवेद खण्ड
५. वै.वा. का इतिहास पृ. ३२०
६. श.ब्रा. १४.५.१.१

प्राप्त हो सकते हैं[१]। न्याय शास्त्र भी गौतम न्यायशास्त्र के रूप में जाना जाता है[२]। ये सभी ग्रन्थ गोतमविरचित हैं अथवा दूसरे द्वारा विरचित हैं – इस विषय में अन्यत्र सविस्तार वर्णन किया जायेगा। इन्होंने गृह्यसूत्र की भी रचना की है[३]।

विशेष – वेद संहिताओं और वेदाङ्ग की रचना एक ही समय में नहीं हुई। एक ऋषि (गोतम) जो ऋक् संहिता के प्राचीन मण्डलों के सूक्तों का द्रष्टा है वह गौतम स्मृति, श्लोक गौतम, वृद्ध गौतम, बृहद्गौतम के नाम से गोतम नहीं कहा जा सकता। प्राचीन काल में मन्त्रों के अर्थ शिष्य को बताने की आवश्यकता नहीं थी। शिष्य मेधावी होते थे, स्वयं अर्थ समझ जाते थे। ऐसा निरुक्तकार यास्क का मत है। अत: जो गोतम ऋक् संहिता में या शतपथ ब्राह्मण में है वह आरण्यक तथा उपनिषद् में नहीं हो सकता। शतपथ ब्राह्मण में गोतम के पुत्र नोधा और वामदेव गौतम कहे गये हैं। न्यायशास्त्र के रचयिता गौतम दूसरे हैं। वे तो अक्षपाद गौतम हैं। गौतमों की एक बड़ी शृंखला पुराणों में मिलती है। गौतमी शिक्षा, गौतम धर्म सूत्र, पितृमेध सूत्र, गौतम गृह्यसूत्र आदि गोतमगोत्रीय, गोतम वंशोत्पन्न गौतमों द्वारा रचित हुये होंगे। मूल गोतम की संहिता थी, वह सामवेद की थी। सामवेद की उपलब्ध कौथुमी तथा जैमिनीय संहिताओं एवं ब्राह्मण ग्रन्थों में "गोतमस्य पर्क:" यह वाक्य अनेकश: आता है। गोतम की भाषा वैदिक भाषा है। संस्कृत भाषा के वेदाङ्ग ग्रन्थों में उसका कर्तृत्व नहीं हो सकता। एक गोतम है राहूगण गोतम, पर गौतम अनेक हैं। इसकी विवेचना "पुराणों में गौतम" इस शीर्षक में की जायेगी। शाखा सम्बन्धी अनेक ग्रन्थ उस शाखा से संबद्ध ऋषियों गोत्रजों द्वारा विरचित होते हैं।

---

१. वै.वा. इतिहास पृ. ३२०

२. वै.वा. इतिहास पृ. १९१

३. संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास – युधिष्ठिर मीमांसक पृ. १३०

गोतम तारों के प्रेक्षक – संसार में सबसे प्रथम नक्षत्रों की पहचान गोतम को हुई। स्वस्त्ययन मन्त्र में "स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवा:" मन्त्र में २७ नक्षत्रों के २७ देवताओं में प्रधान रूप से ४ देवताओं की स्तुतिकर पूरे खगोल स्थित सभी देवों, नक्षत्रों को अनुकूल करने का प्रयास है। इस तथ्य को पं. गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी ने अपने ग्रन्थ में विशद रूप में प्रस्तुत किया है। **डॉ. सत्यप्रकाश** ने भी **"भारतीय विज्ञान के कर्णधार"** नामक ग्रन्थ में राहूगण गोतम को सर्वप्रथम नक्षत्रज्ञाता निरूपित किया है।

वैयाकरण गोतम– महाभाष्य में **आपिशलिपाणिनीय-व्याडीयगोतमीया:** इस वाक्य का प्रयोग हुआ है[1]। इसमें तीन वैयाकरण ही हैं। अत: इन तीनों के साथ स्मृत गोतम वैयाकरण ही प्रतिभासित होता है – इसकी पुष्टि में तैत्तिरीय प्रातिशाख्य में प्रमाण उपलब्ध होता है। प्रथमपूर्वो हकारश्चतुर्थं तस्य सस्थानं प्लाक्षिकौण्डिन्यगौतमपौष्करसादीनाम् (५.३८)। प्रातिशाख्य में इसका प्रमाण उद्धृत है अत: गोतम या गौतम का भी कोई प्रातिशाख्य होगा।

मैत्रायणीय प्रातिशाख्य में गोतम का मत उद्धृत है। यहाँ प्लाक्षि, कौण्डिन्य, गौतम, पौष्करसादि वैयाकरणों का मत उद्धृत है[2]।

निष्कर्ष – यह है कि महाभाष्य, तैत्तिरीयप्रातिशाख्य, मैत्रायणीयप्रातिशाख्य आदि में गोतम के मत उद्धृत हैं। अत: यह अवश्य ही वैयाकरण होगा अथवा अपनी शाखा के प्रातिशाख्य का कर्ता होगा।

लाट्यायन श्रौतसूत्र में "उत्तमयोरिति गौतम:" यह गौतम का मत उद्धृत है। गोभिल गृह्यसूत्र में भी गौतम नाम आया है। गौतम स्मृति भी उपलब्ध है। बौधायन धर्मसूत्र में गौतम धर्मशास्त्र का उल्लेख है। इस प्रकार संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषत्, शिक्षा, श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र, प्रातिशाख्य आदि का कर्ता गोतम है अथवा इन ग्रन्थों में

१. महाभाष्य ६.२.३६,

२. मैत्रायणी संहिता-श्रीधर शास्त्री लिखित भूमिका पृ. १६

गोतम का मत उद्धृत है। अतः गोतम या गौतम वेद-वेदाङ्ग, न्याय, धर्मशास्त्र आदि ग्रन्थों के कर्ता, वेत्ता तथा विज्ञानवेत्ता प्रमाणित होते हैं।

गोतमदृष्ट २१४ मन्त्रों में कुछ विशिष्ट तत्व हैं। अभी तक रहूगण तथा गोतम राहूगण का परिचय दिया गया। रहूगण के द्वादश मन्त्रों की क्या विशेषता है, यह भी लेख्य है। गोतमदृष्ट २१४ मन्त्रों में से कतिपय मन्त्रों की विशेषताएँ उद्धृत की जा रही हैं :-

गोतमदृष्ट (ऋग्वेद प्रथम मण्डल ८९ वां सूक्त) **स्वस्त्ययन सूक्त** भारतीय संस्कृति का महत्त्वपूर्ण अंश है। समस्त शुभ कार्यों एवं समस्त संस्कारों के प्रारम्भ में इस स्वस्त्ययन सूक्त की दश ऋचाओं का पाठ किया जाता है। तभी कोई यज्ञ या संस्कार प्रारम्भ किया जाता है। यह स्वस्त्ययन **आ नो भद्राः** से प्रारम्भ कर **अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम्** तक समाहित है। इसी सूक्त में **स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः** मन्त्र आया है जो वैज्ञानिकता को प्रस्तुत करते हुए खगोल मण्डल के समस्त देवताओं, ग्रहों, नक्षत्रों, राशियों, लग्नों को अनुकूल बनाता है। इस मन्त्र का वैज्ञानिक अर्थ पहले तारों के प्रेक्षक के रूप में गोतम का वैशिष्ट्य प्रतिपादित करता है। गोतम ने अग्नि की स्तुति करते हुए कहा है :-

मैं तुम्हारा आह्वान उस प्रकार कर रहा हूँ जिस प्रकार अङ्गिरा ने किया था। इस मन्त्र से यह प्रमाणित होता है कि गोतम से पहले अङ्गिरा हैं।

गोतम के मन्त्रों में कुछ प्राचीन ऋषियों के नाम आये हैं जिनमें अथर्वा, मनु, दध्यङ्, अङ्गिरा तथा उशना के नाम प्रमुख हैं। अतः ये सभी गोतम के समकालिक अथवा पूर्वकालिक हैं। एक मन्त्र से यह अभिप्राय प्रकट होता है कि इन्द्र ने दधीचि ऋषि की अस्थियों से बनाये वज्र से ९९ वृत्रों को मारा था। अस्थि से वज्र बनाने का ज्ञान गोतम को हुआ[१]।

---

१. इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः। जघान नवतीर्नव।। ऋ.सं. १.८४.१३

गोतम के मन्त्रों की स्तुति का रहस्य यह है कि मरुतों ने प्रसन्न होकर प्यासे गोतम के पास कुआँ लाकर उसे औंधाकरके जल आहाव में भर दिया जिससे पिपासित होकर गोतम संतृप्त हुए।

आज के इतिहासकार कहते हैं कि वैदिक काल में लोगों को लोहे का ज्ञान नहीं था। उनका यह कथन पूर्ण रूप से निरस्त हो जाता है पादलिखित मन्त्रों से[१]। ऋग्वेद के समय लोहे के वज्र बनते थे। यह गोतम की ऋचाओं से स्पष्ट है।

सोम की स्तुति में गोतम ने कहा – हे सोम ! तुमने समस्त औषधियों को, जल को तथा गौओं को उत्पन्न किया। तुमने अन्तरिक्ष का विस्तार किया, ज्योति से समस्त अन्धकार को दूर किया।[२]

इस प्रकार गोतम ने २१४ मन्त्रों द्वारा अनेक ज्ञान और विज्ञान का प्रसार कर समस्त जगत् का भूरि-भूरि कल्याण किया। यह उनके वैदिक दर्शन का रहस्य है। सरस्वती नदी से सदानीरा नदी तक अर्थात् पाञ्चाल से अङ्ग देश तक वैदिक यज्ञ का जो उन्होने प्रचार किया, इस दृष्टि से भारतीय संस्कृति के उन्नायक के रूप में गोतम प्रतिष्ठित होते हैं और समस्त ऋषियों में महत् श्रेय के पात्र समझे जाते हैं।

समीक्षा – ऋषि मन्त्रद्रष्टा होने पर वैज्ञानिक भी होते हैं। १८ मन्त्रद्रष्टा ऋषि ५२ गोतमों में है जिनमें मुख्य गोतम, अङ्गिरा, वामदेव, दीर्घतमा, कक्षीवान्, अयास्य, घोषा काक्षीवती, उशना आदि आते हैं। गोतमगोत्रीय इन ऋषियों के मन्त्रों में जो वैज्ञानिकता है उसे यथामति किञ्चित् रूप में प्रस्तुत करना तथा उन विशिष्ट ऋषियों के चरित का उल्लेख करना परमावश्यक है।

---

१. आयसः सहस्रभृष्टिः, वज्रः-ऋ.सं. १.८०.१२
अभ्येनं वज्रमायसम् – ऋ.सं. १.८१.४

२. त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वं गाः।
त्वमाततन्थोर्वन्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वितमो ववर्थ। ऋ.सं. १.९१.२२

गोतम राहूगण का परिचय :- मूल ऋषि अङ्गिरा के पुत्र रहूगण आङ्गिरस हैं। उनके पुत्र गोतम राहूगण हैं। रहूगण १२ मन्त्रों के द्रष्टा हैं। राहूगण गोतम २१४ मन्त्रों के। राहूगण गोतम की कुछ विशेषतायें इस प्रकार हैं। गोतम शब्द का निर्वचन सायण ने गोतम का गन्तृतम अर्थ करके गोतम के जीवन के महत्तम उद्देश्य को प्रकट किया है। वस्तुतः गोतम ने अतिशय गमन करके सरस्वती नदी से सदानीरा नदी के क्षेत्र तक वैदिक वैश्वानर को ले जाकर वैदिक यज्ञ का प्रचार किया तथा अयज्ञीय क्षेत्र को यज्ञीय क्षेत्र में निरूपित कर दिया, यह उनके जीवन का प्रमुख कर्तृत्व है। गोतम के कार्यों को जानने के लिये वेदों में आये हुये नामों से संबंधी मन्त्रों को निर्दिष्ट करने पर कुछ विशिष्ट तत्त्व प्रकट हो जाते हैं। ऋग्वेद में इस गोतम के नाम १७ बार और अथर्ववेद में २ बार आये हैं। गोतम का नाम ऋग्वेद में आये या न आये इससे गोतम की महत्ता घटती नहीं है। पर नाम आ जाने से महत्ता बढ़ जाती है। वे एक विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति हेतु स्तुति करते हैं। गोतम मरुस्थल में पानी बिना प्यासे थे। उन्होंने मरुद् देवों की स्तुति पानी देने के लिये की। मरुतों ने गोतम के लिये कुआँ ला दिया। उस कुएँ को औंधा कर आहाव में जल भर दिया। कार्य सम्पन्न हुआ। एक ऋषि कहता है – हे गोतम तुम्हारी मन्त्र-स्तुति का यह प्रभाव है कि मरुतों को विवश होकर जल देना ही पड़ा। यह गोतम के मन्त्र का प्रभाव या शक्ति है।

एक मन्त्र में वामदेव ने कहा - हे अग्ने! तुम्हारे लिये किये गये स्तोत्र से बन्धुता (निकट स्थिति) उत्पन्न हुई। उससे मैं महान् राक्षसों को नष्ट कर रहा हूँ। ऐसे स्तोत्र का अथवा रहस्य का या ज्ञान का पता मुझे पिता गोतम से प्राप्त हुआ। इस मन्त्र से वामदेव के पिता गोतम की सत्य स्थिति का पता लगता है जो इस ग्रन्थ के लिपिबद्ध करने में अतिशय सहायता तथा प्रेरणादायक सिद्ध होता है।

महो रुजामि बन्धुता वचोभिस्तन्मा पितुर्गोतमादन्वियाय

ऋ.सं. ४.४.११

गोतम राहूगण के संबंध में शतपथ ब्राह्मण में एक आख्यायिका है जो गोतम के कर्तृत्व में महत्त्वपूर्ण योगदान दे रही है।

मथु और गोतम की स्थिति सरस्वती के किनारे बताई गई है। अन्तिम निवास सदानीरा के निकट बताया गया है। पूर्वी भारत में वैदिक यज्ञ का प्रचार यजमान मथु और पुरोहित गोतम की आख्यायिका द्वारा किया गया है, जिसमें प्रधान रूप से वैश्वानर अग्नि का योगदान है।

गोतम – २१४ मन्त्रों के द्रष्टा – ये २३ सूक्तों के द्रष्टा हैं। ओल्डेनबर्ग महाशय का यह कथन कि गोतम किसी वैयक्तिक सूक्त का द्रष्टा नहीं है, निरस्त हो जाता है। गोतम की शाखा – गौतमी सामवेद की एक शाखा है। गौतम अनेक याज्ञिक विधि-विधानों के वेत्ता हैं। शाखा सम्बन्धी ग्रन्थ, गौतमीशिक्षा, गृह्यसूत्र, गौतमपितृमेध सूत्र, गौतमधर्मसूत्र, गौतमस्मृति, न्यायशास्त्र आदि उपलब्ध होते हैं। वैयाकरणों में गोतम नाम है। अतः प्रातिशाख्य कर्ता अवश्य होगा।

गोतम तारों के प्रेक्षक – बृहस्पति ग्रह की पहचान। स्वस्त्ययन सूक्त के द्रष्टा। इसमें चार देवताओं की स्तुति कर पूरे खगोल मण्डल के ग्रहों-नक्षत्रों को अनुकूल बनाया गया है।

द्वितीय परिच्छेद

वेद-वेदाङ्ग में अंगिरा ऋषि का स्वरूप

गोतम राहूगण के मूल पुरुष अङ्गिरा ऋषि के स्वरूप का विवेचन किया जा रहा है। इसके पहले रहूगण आङ्गिरस तथा गोतम राहूगण का वेद में योगदान तथा परिचय पूर्व में प्रदर्शित किया गया है। अङ्गिरा के मूलपुरुष होने का प्रमाण यह है कि गोतम दृष्ट मन्त्र में स्वयं गोतम ने स्वयं को रहूगण पुत्र माना है तथा स्तुति करते हुए कहा है कि हे अग्ने! मैं अङ्गिरा ऋषि के समान तुम्हारा आह्वान करता हूँ। यह अङ्गिरस्वत् शब्द द्योतित करता है कि गोतम अपने पूर्वज अङ्गिरा का स्मरण कर रहे हैं जो इनका पितामह है और मूल पुरुष है। ऋषि-वंश इस प्रकार है :-

अङ्गिरा (मूलपुरुष)
|
रहूगण आङ्गिरस
|
गोतम राहूगण

अङ्गिरस शब्द चार वेदों की प्रकाशित एकादश संहिताओं में ४१६ बार भिन्न-भिन्न विभक्तियों में प्रयुक्त देखा गया है। उन सभी पदों का महत्त्व प्रतिपादित किया जा रहा है।

अङ्गिरा ऋषि की ऐतिहासिकता के विषय में कीथ और मैकडानल संदेह करते हैं। ये दोनों इन्हें अर्ध पौराणिक मानते हैं। यहाँ अङ्गिरा ऋषि के अस्तित्व का वेद और वेदाङ्ग प्रमाणों से निरूपण किया जा रहा है।

कुछ मन्त्रों में अग्नि ही अङ्गिरा है, इस नाम का कोई ऋषि नहीं है। कई भाष्यकारों का यह मत समीचीन नहीं है। बहुत-सी ऋचाओं में अङ्गिरा ऋषि कहे गये हैं।

एक ऋक् मन्त्र (१.१.६) में अङ्गिरा का कारण (जनक) अग्नि है। इस कारण अग्नि अन्य हुआ और अङ्गिरा अन्य। स्कन्दस्वामी ऋक् भाष्यकार का कथन है कि अग्नि अङ्गिरा नहीं है।

ऐतरेय शाखाध्यायी लोग (ऐ.ब्रा. ३.३४) कहते हैं जो अङ्गार थे वे अङ्गिरस् हुये। ऐसा वैदिक समाम्नाय कहते हैं। सायण का कथन है कि अङ्गिरा ऋषि के कारण उत्पादक अङ्गार रूप अग्नि को भी अङ्गिरस् रूप दिया जा सकता है। पर इससे यह प्रकट होता है कि अग्नि पृथक् है और अङ्गिरा पृथक्।

निरुक्त (३.१७) में अङ्गिरस्वत् पद के निर्वचन में यास्क का कथन है कि अङ्गारों में अङ्गिरा ऋषि हुए। एक ऋक् (१.४५.३) के द्वारा प्रस्कण्व ऋषि अग्नि की स्तुति करते हैं। हे अग्ने! जिस तरह प्रियमेध ऋषि का, अत्रि ऋषि का, विरूप अङ्गिरा ऋषि का आह्वान सुना, उसी प्रकार मुझ प्रस्कण्व ऋषि का आह्वान सुनें। इस मन्त्र से अङ्गिरा ऋषि का अस्तित्व प्रकट होता है। यास्क की मान्यता है कि इन तीनों ऋषियों का जैसे आह्वान सुना, वैसे ही प्रस्कण्व ऋषि का आह्वान सुनिये।

बृहद्देवता (५.९.७ से ५.९९) ग्रन्थ में प्रजा की कामना वाले प्रजापति ने त्रिवर्षीय सत्र में साध्यों के साथ तथा विश्वेदेवों के साथ सत्र यज्ञ को प्रारंभ किया था। उस सत्र में दीक्षणीया इष्टि में शरीरिणी वाक् प्रकट हुई जिसे देखकर एक साथ ही प्रजापति और वरुण का शुक्र-स्कन्दन हुआ। वायु ने उसका अग्नि में प्रक्षेप किया। उस अग्नि की ज्वाला से भृगु उत्पन्न हुये और अङ्गारों से अङ्गिरा ऋषि उत्पन्न हुए।

प्रजापति ने दुहिता का ध्यान किया। कुछ ऋषियों का विचार है कि वह दिव द्युलोक आकाश था। कुछ ऋषि कहते हैं कि उषा थी।

उसके पास मृग बनकर रोहित (लोहित) हुई ऋतुमती दिव या उषा के पास गये। देवताओं ने इसे देखा और कहा - प्रजापति यह अकृत या अनुचित अकरणीय कार्य कर रहे हैं। उस प्रजापति को, जो कोई प्रजापति को कष्ट दे या उसे मारे, ऐसे देवताओं को खोजने पर भी नहीं पाया गया। समस्त देवताओं में जो घोरतम शरीर था, वह सब मिलकर एक शरीर जो बना उसे रुद्र कहते हैं। वह रुद्र भूतवन्नाम भूतपति हुये। देवताओं ने रुद्र से कहा – अकृत करने वाले प्रजापति को बाण से वेध दीजिये। रुद्र ने स्वीकार किया।

उन्होंने धनुष पर बाण चढ़ाकर प्रजापति का वेधन किया। मृगरूप प्रजापति विद्ध होकर ऊपर पतनशील होकर आकाश में स्थित हुये। उन्हीं प्रजापति को मृगशीर्ष नक्षत्र कहते हैं। जो मृगव्याध अर्थात् मृगघाती रुद्र थे वे आकाश में मृगव्याध हुये। जो दुहिता रक्तवर्णा मृगी थी, वह रोहिणी नक्षत्र हुई। जो रुद्र ने प्रेरित इषुत्रिकाण्ड किया। वह बाण हुआ।

मृग प्रजापति द्वारा मृगी में सिक्त रेत (वीर्य) भूमि पर आगे दौड़ा। वह एक स्थान पर सर बन गया। उस सर को द्रवरहित बनाने के लिये वैश्वानर अग्नि ने चारों तरफ से घेर दिया। मरुतों ने वायु देकर शोषण किया। द्रवी भाव के अभाव में वह पिण्डस्वरूप हुआ। प्रथम पिण्ड देदीप्यमान था, उससे आदित्य हुए। द्वितीय पिण्ड से भृगु उत्पन्न हुए। उस भृगु को वरुण ने पुत्ररूप में स्वीकार किया। अतः भृगु वारुणि कहे जाते हैं। तृतीय पिण्ड अतिशय दीप्त हुआ, उससे अदितिपुत्र आदित्य हुए। जो रेतः पिण्ड दग्ध होकर अङ्गार हुए, वे सभी अङ्गिरा नामक ऋषि हुए। पुनः कुछ अङ्गार शान्तिरहित होकर अतिदीप्त हुए। वह सब मिलकर बृहस्पति हुआ (ऐ.ब्रा. १३.३४)। सायण-भाष्य, निरुक्त, बृहद्देवता में जो कुछ वृत्त उपलब्ध होता है, सब का मूल ऐतरेय ब्राह्मण है। निरुक्त के दुर्ग-भाष्य से यह स्पष्ट होता है कि वे अङ्गिरस पुत्ररूप में अग्नि से उत्पन्न हुए। यहाँ अङ्गिरः प्रधानगण अङ्गिरस कहे जाते हैं।

उपर्युक्त सभी प्रमाणों से अङ्गिरस की स्थिति प्रमाणित होती है। ऋग्वेद (३.३१.५) से ज्ञात होता है कि वे अङ्गिरस संख्या में सात थे। सायण ने भी अपने भाष्य में सात अङ्गिरस के मध्य में वरिष्ठ अङ्गिरा ऋषि को माना है (ऋ.सं. ३.३१.७)।

हिरण्यस्तूप अङ्गिरस (ऋ.सं. १.३१.१) कहते हैं-हे अग्ने! तुम प्रथम (आद्य) हो। अङ्गिरस ऋषियों के जनक होने के कारण ऐसे अङ्गिरा ऋषि हुए।

(ऋ.सं. १.३१.१७) हे अग्ने! तुम मनुष्वत् मनु के समान, अङ्गिरस्वत् (अङ्गिरा के समान), ययातिवत् (ययाति के समान) सदन में आ जाओ। यहाँ अङ्गिरा के तुल्य अङ्गिरस्वत् है। तेन तुल्यं क्रिया चेद् वतिः – इस सूत्र से वति प्रत्यय हुआ है। अङ्गिरसस्वत् पद से अङ्गिरस का अस्तित्व द्योतित होता है। कुत्स अङ्गिरस अपने को संबोधित कर (ऋ.सं. १.११२.१८) कहते हैं – हे अङ्गिरः, अङ्गिरस गोत्र में उत्पन्न तुम अश्विनौ की स्तुति करो। एक मन्त्र (ऋ.सं. ५.८.४) में सायण अग्नि को अङ्गिरा का पुत्र मानते हैं। कार्य और कारण में अभेद मानने से अङ्गिरसों का प्रकृति (जनक) होते हुए भी अग्नि अङ्गिरा कहा जाता है।

अङ्गिरा द्वारा अग्नि की खोज – हे अग्ने अङ्गिरा[१] वंशोद्भव अङ्गिरस ऋषि ने जल में प्रविष्ट तुझे खोजकर पाया। पुनर्नष्ट होने पर वन-वन में अनेक वनस्पति में आश्रित तुझे प्राप्त किया।

इसी कारण अग्नि काष्ठमय अरणियों से उत्पन्न होता है[२]। इस मन्त्र में समस्त ऋषियों से बढ़कर अङ्गिरसों का वैशिष्ट्य परिलक्षित

१. ऋ.सं. ५.१०.७, ५.११.६

२. क्र.सं. ५.११.६; मा.सं. १५.२८; तै.सं. ४.४.४; काठ. सं. ३९.१४; कौ.सं. २.२५८

होता है जिन्होंने अग्नि के अन्वेषण में सफलता प्राप्त की। अनेक स्थलों पर सायण अङ्गिरः पद को अग्नि का संबोधन मानते हैं[1]।

सात अङ्गिरा गण में अग्नि – अङ्गिरा ऋषि सात हैं (ऋ. ३.३१.५)। उनमें अङ्गिरसों के मध्य में एक अग्नि भी आता है (ऋ. ८.६०.२; ८.७४.११)। वह अग्नि अङ्गिरसों में वरिष्ठ कहा जाता है (ऋ. ८.८४.४)। इसीलिये अग्नि अङ्गिरस्तम कहा जाता है (ऋ. २.१३.५)। महीधर अङ्गिरः पद को अग्नि का संबोधन मानते हुए निर्वचन करते हैं कि अङ्गिरा ऋषियों द्वारा पूर्व में उत्पन्न होने के कारण अथवा अङ्ग की सुन्दरता के कारण अङ्गिरा अग्नि है[2]। इससे स्पष्ट होता है कि अङ्गिरसों ने सर्वप्रथम अग्नि को उत्पन्न किया।

अङ्गिरस अपहृत गायों के पदचिह्न ज्ञाता – नोधा ऋषि ऋत्विजों से कहते हैं – आप लोग इन्द्र के लिये नमस्कार प्रदान कीजिये जिससे मेरे पूर्व पितर, पूर्व पुरुष, अङ्गिरस पणिनामक असुरों के द्वारा अपहरण की गई गायों के पद चिह्न ज्ञाता या मार्ग जानने वाले होने से उन्होंने गायों की प्राप्ति कर ली[3]।

अङ्गिरस द्वारा पणि नामक असुरों का भञ्जन (मुख तोड़ना)

शक्तिपुत्र पराशर ऋषि कहते हैं – हमारे पितर अङ्गिरस दृढ़ अङ्ग वाले पणि नामक असुरों का भञ्जन किया अर्थात् मुख तोड़ डाला (ऋ.सं. १.७१.२)। इस मन्त्र से यह प्रतीत होता है कि पराशर अङ्गिरा के गोत्र में उत्पन्न थे। विश्वामित्र कहते हैं कि भोज विरूप मेधातिथि प्रभृति अङ्गिरस दिवः पुत्र हैं (ऋ. ३.५३.७)। वे असुर के वीर मुझे अश्वमेध में धन देते हुये आयु को बढ़ाते हैं। इससे स्पष्ट है कि विरूप अङ्गिरस विश्वामित्र के समय में थे। अन्य मन्त्र में भी वे अङ्गिरस दिवः पुत्र या द्युलोक के पुत्र कहे गये हैं। अयास्य आङ्गिरस

---

१. ऋ.सं. १.१.६; १.७४.५; ४.९.७; ५.८.४; ५.११.६; ५.२१.१; ६.२.१०; ८.७५.५; ८.१०२.१७; खि. २.१३.४; मा.सं. १२.८; तै.सं. ४.२.७.१

२. मा.सं. ११.४५; तै.सं. ४.१.४.७

३. ऋ.सं. १.६२.२; मा.सं. ३४.१७.

ऋषि का कथन है कि अङ्गिरस ऋत (सत्य) का शंसन करते हुये, व्यक्त करते हुये, कल्याण कर्म का ध्यान करते हुये, अग्नि के पुत्र दिवः पुत्र अङ्गिरस विप्र पद धारण करते हुये यज्ञ के प्रथम धाम की स्तुति करते हैं[१]।

वामदेव अन्य छः अङ्गिरा ऋषियों के साथ कहते हैं कि हम लोग माता उषा के पास से सात संख्या वाले विप्र प्रथम या श्रेष्ठ होते हुए मनुष्यों को उत्पन्न करते हैं। हम लोग दिवस्पुत्र अङ्गिरस भूति-वैभव से युक्त होवें। हम जल वाले मेघ का भेदन करें। मेधातिथि प्रभृति अङ्गिरस ने ऋत के द्वारा अद्रि (पर्वत) का भेदन करते हुए उन्हें फेंक दिया। तत्पश्चात् गौओं को प्राप्त किया।

अङ्गिरस ऋषि ने उषस् काल में उषा के आगमन पर गौओं के आवरक (ढकने वाले) अंधकार के हट जाने पर गौओं को प्राप्त कर लिया। इन गायों के लिए ऊंचे स्थान पर जल का उत्स (स्रोत) था। उस उदक मार्ग से सरमा ने गायों को प्राप्त किया अथवा उनका पता लगाया। अङ्गिरसों की देवविषयक स्तुति सत्य फल वाली हुई। क्योंकि उनके स्तोत्र से अन्धकार विदीर्ण हुआ। अन्धकार दूर होने पर गायों के समूह को बाहर निकाला।

वसिष्ठ ऋषि का कथन है कि ब्रह्मा अङ्गिरस सर्वत्र व्याप्त हो जाए। इससे सिद्ध होता है कि ब्रह्मा नामक अङ्गिरस थे। तुरण्यव अङ्गिरस ने सविता की प्रार्थना करते हुये सवितृ सम्बन्धी रत्न को प्राप्त किया[२]।

मन्त्रद्रष्टा वैवस्वत यम का दर्शन है कि अङ्गिरस, अथवा और भृगु उनके पितर थे[३]। वे पितर नवग्वा थे तथा सोम्यासः या सोमपान की योग्यता रखते हैं। हम उनकी सुन्दर मति में भद्रकर कार्यों में तथा सौमनस्य सुन्दर मन के भावों में रहें। इस मन्त्र के देवता अङ्गिरस हैं।

---

१. ऋ.सं. १०.६७.२; शौ सं. २०.९१.२

२. ऋ. ४.२.१५, ४.३.११, ५.४५.८, ६.६५.५, ७.४२.१, ७.५२.३

३. ऋ.सं. १०.१४.६; मा.सं. १९.५०; तै.सं. २.६.१२.१७; शौ.सं. १८.१.५८

गम्भीर कर्म करने वाले विरूप ऋषि वे अङ्गिरस पुत्र हैं। वे अङ्गिरस अग्नि से उत्पन्न हुये (ऋ. १०.६२.५)। विश्वरूप अङ्गिरस सामगान करने वाले सामग हैं (ऋ. १०.७८.५)।

अङ्गिरसों के सत्र प्रारम्भ होने पर आसीन ऋषियों में से कुछ ऋषि नव मास में उठ गये (१०.१०८.८)। वे नवग्वा अङ्गिरस हुये। उसी प्रकार दशग्वा हुये। उनमें से प्रथम अयास्य नामक ऋषि तथा ये ऋषि भी आयें। वे गायों के समूह का विभाग कर लें। सरमा (कुतिया) पणियों के प्रति यह कहती है कि अङ्गिरस ऋषि ने चित्रा यागादि लक्षण से तथा तपस्या द्वारा गायों को प्राप्त किया (ऋ. १०. १६९.२)। अङ्गिरसों की प्रार्थना की जाती है कि वे मुझे मेधा (तीव्र धारण शक्ति) प्रदान करें[१]। ज्योति के द्वारा अङ्गिरस ने महिमा को प्राप्त किया।

अङ्गिरसः विविध यज्ञों के प्रवर्तक – आदित्य और अङ्गिरस ने सर्व प्रथम अग्नि का आधान किया। इन दोनों ने दर्शपूर्णमास की इच्छा की। उन अङ्गिरस की हवि निरुप्त थी अर्थात् हवि तैयार की हुई थी। आदित्यों ने इन दो होमों को देखा। उनका हवन किया। इस प्रकार आदित्यों ने दर्शपूर्णमास को पहले संपन्न किया[२]। अङ्गिरसों की द्विरात्र विधि है। इसका यह फल है कि जो विद्वान् द्विरात्र से यज्ञ करता है वह स्वर्ग लोक को प्राप्त करता है[३]।

कहा गया – अङ्गिरस इस यज्ञ के प्रथम अनुवाकों से मेरी रक्षा करें। अङ्गिरस ने इस यज्ञ के प्रातः अनुवाकों से मेरे लिये हवन किया।

अङ्गिरस देवताओं के व्रत से तुम्हारे लिये धारण करता हूँ। इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि अङ्गिरस देवता थे। आदित्यों में तथा

---

१. खि. ४.८.१; का.गृ ४१.१८

२. तै.सं. ५.७.२.५; काठ.सं. २२.१०; ३८.१३ क. ३५.४; तै.सं. ३.५.१.५

३. तै.सं. ७.१.४.१

अङ्गिरस में स्वर्गलोक प्राप्ति के लिये स्पर्धा लक्षित होती है[१]। अङ्गिरस तो बहुत से यज्ञों के प्रवर्तक हैं[२]। अग्निचयन भी उन लोगों ने किया अर्थात् उसके भी ये ही प्रवर्तक हैं। अङ्गिरस देवों के छः मन्त्र हैं[३]। नाभानेदिष्ठ इन ऋचाओं से अङ्गिरस की स्तुति करते हैं कि आप लोगों ने दक्षिणा से संगत होकर इन्द्र की मित्रता और अमृतत्व को प्राप्त कर लिया है[४]। हे अङ्गिरस! आप लोगों के लिए भद्र (कल्याणकर) कर्म हो। हे अङ्गिरस! पितृस्वरूप होते हुए आप लोगों ने पणि द्वारा अपहृत गोधन को बाहर ला दिया। यज्ञ द्वारा बल नामक असुर को नष्ट कर दिया। उनके लिये दीर्घायुष्य हो[५]। अङ्गिरस आप ऋषिजन या आप देवों ने ऋत के द्वारा द्युलोक में सूर्य की स्थापना की तथा पृथिवी को प्रथित (विस्तृत) किया। उनके लिये सुप्रजा-सुसन्तति प्राप्त हो[६]।

हे देवपुत्र अङ्गिरस ऋषियों! यह नाभानेदिष्ठ कल्याण वचन कहता है, आप सुनें, उनके लिये सुब्रह्मण्य हो[७]। मित्रावरुण की भी स्तुति की जा रही है – हे मित्रावरुणौ! आप दोनों देवों ने अङ्गिरा ऋषि की रक्षा की थी। अगस्त्य, जमदग्नि, अत्रि, कश्यप तथा वसिष्ठ की रक्षा की थी। वे दोनों मुझे पाप से मुक्त करें[८]। इस मन्त्र से सुस्पष्ट हो रहा है कि अङ्गिरा नामक ऋषि थे। छः ऋषियों के मध्य में अङ्गिरा ऋषि हैं।

---

१. काठ.सं. ४.१४; ३१.१५; भा.श्रौ. ४.१२.४; आप.श्रौ ४.९.२; काठ.सं. ५.४; ३२.४; भा.श्रौ ४.१८.७; काठ.सं. ८.४, ७.१३; क. ६.९; काठ.सं. ९.१६

२. काठ.सं. ४०.५

३. ऋ.सं. १०.६२.१-६

४. ऋ.सं. १०.६१.१

५. ऋ.सं. १०.६२.३, ४; शौ.सं. ४.२९.३

६. ऋ.सं. १०.६२.३

७. तत्रैव - १०.६२.४

८. शौ.सं. ४.२९.३

अङ्गिरस ऋषियों के द्वारा गौओं के अन्वेषण के लिये सरमा के भेजे जाने पर सरमा ने अपने पुत्रों के लिये अन्न प्राप्त किया[१]। कक्षीवान् ऋषि कहते हैं कि हमारे द्वारा की गई अङ्गिरसों की स्तुति को इन्द्र कब सुनेंगे[२]। अग्नि अङ्गिरसों के मध्य में ज्येष्ठ कहे गये हैं[३]। अङ्गिरसों के पुत्र कक्षीवान् ने संवनन (समृद्धि मार्ग) का ज्ञान प्राप्त किया। विश्वेदेवों ने भी अपने प्रिय संभजन अतुल समृद्धि को प्राप्त किया[४]। अङ्गिरसों का तप उत्कृष्ट था क्योंकि दर्शपूर्णमास यज्ञ में कपालों को सुचारु रूप से पक जाने के लिये भृगु तथा अङ्गिरस के तप से तप्त हो जाओ – ऐसा कहा गया है[५]। अब अंगिरस के प्रथमान्त नाम बताने जा रहे हैं। कुछ पूर्व में ही कहे गये हैं। हे अग्ने! तुम आद्य प्रथम अङ्गिरा नामक ऋषि हुये[६]। प्रियमेध, कण्व, अत्रि, मनु इन ऋषियों की पङ्क्ति में अङ्गिरा का नाम गणना करने से अङ्गिरा ऋषि है। ये सभी ऋषि मुझ दिवोदास पुत्र परुच्छेप मन्त्रद्रष्टा ऋषि के जन्म को जानते हैं[७]। अङ्गिरा ऋषि ने समस्त स्तुति आदि लक्षणों को सत्य किया[८]। अङ्गिरा ऋषि जन्म से पूर्व प्राचीन होते हुए देवताओं की स्तुति करते हैं[९]। अङ्गिरस् सोम्य पितर मुझे शत्रुओं के ऊपर विजय प्राप्ति के लिये उद्यत समझकर मेरे शत्रुओं को निगृहीत करने के लिये

---

१. ऋ.सं. १.६२.३
२. तत्रैव – १.१२१.१
३. ऋ.सं. १.१२७.२ काठ.सं. ३९.१५
४. खि. ३.१५.३२, ५.१.३
५. मा.सं. १.१८; का. १.६.४; श. १.२.१.१३; तै.सं.३.२.७.६. तै.सं. १.१.७.२ काठ.सं. ३१.६
६. ऋ.सं. १.३१.१ मा.सं. ३४.१२
७. ऋ. सं. १.१३९.९
८. तत्रैव – ५.४५.७
९. तत्रैव १०.९२.१५

उद्युक्त हो जायँ[१]। अन्य देवताओं के साथ अङ्गिरस देव भी क्रव्याद अग्नि के शमन के लिये आहूत किये गये हैं[२]। इस खदिरफाल मणि को बांधकर अङ्गिरस ने शत्रुओं के नगरों को भेदन किया[३]। स्कम्भ ब्रह्म के नेत्रस्वरूप अङ्गिरस हुये[४]। मेरे द्वारा स्तुतिप्राप्त मनीषी अङ्गिरस देव मुझे पाप से मुक्त करें[५]। अङ्गिरसों की हवि घृतयुक्त है[६]। नवग्वा अङ्गिरस इस कुश पर आसीन होकर हर्ष का अनुभव करें[७]। तुझे पूर्व्य ब्राह्मण अङ्गिरा जानते हैं[८]। अङ्गिरस देव थे, यह स्पष्ट रूप से तैत्तिरीय संहिता में निर्दिष्ट हैं[९]। देवों ने अङ्गिरस देवों के लिए धेनु प्रदान की[१०]।

एकादश संहिताओं में अङ्गिरस के जितने नाम आये हैं उनमें २२७ नाम एकवचन में हैं। उन नामों से अङ्गिरा ऋषि वेदमन्त्र के प्रमाणों से प्रमाणित होते हैं। उनके उद्धरण पूर्व में ही दिये गये हैं। एक नाम द्विवचन में है। १८८ नाम बहुवचन में पढ़े गये हैं। इससे यह प्रमाणित हुआ कि अङ्गिरस का एक गण था। उस गण में सात ऋषि थे।

उनमें अङ्गिरा ऋषि, अग्नि, वामदेव, भोज, विरूप, मेधातिथि ब्रह्मा अङ्गिरस, तुरण्यव अङ्गिरस, विश्वरूप अङ्गिरस तथा अथर्वा हैं।

---

१. शौ.सं. २.१२.५
२. तत्रैव ३.२१.८
३. तत्रैव १०.६.२०
४. तत्रैव १०.७.१८
५. तत्रैव ११.८.१३
६. तत्रैव १२.३.४५
७. तत्रैव १८.३.२०
८. तत्रैव १९.३४.६
९. तै.सं. ७.१.१८.२, काठ.सं. ४१.९
१०. ऋ.सं. १.१३९.७

पर इनमें से अग्नि और वामदेव को नहीं गिना जा सकता। क्योंकि वामदेव तो गोतमपुत्र हैं। अग्नि भी पृथक् है।

अङ्गिरस ने नाभानेदिष्ठ को धन दिया – संप्रति ब्राह्मण अरण्यकों में समागत नामों का विवेचन किया जा रहा है। अङ्गिरस ने समिधाओं द्वारा अग्नि का समिन्धन किया[१]। आदित्य थे और अङ्गिरस। उन दोनों देवों ने पूर्वकाल में अग्नि के द्वारा अग्नि का यजन किया। उन सभी ने स्वर्ग लोकों की प्राप्ति की[२]।

आदित्य और अङ्गिरस ने स्वर्गलोक-प्राप्ति के लिये स्पर्धा की – हम पहले जायेंगे, हम सब पहले जाऐंगे। इस प्रकार उनमें से आदित्यों ने पूर्व ही स्वर्गलोक में गमन किया, पश्चात् अङ्गिरस गये अथवा साठ वर्ष पीछे गये। अङ्गिरस ने विलम्ब से साठ संख्या वाले वर्षों के व्यतीत हो जाने पर स्वर्ग की प्राप्ति की[३]।

नाभानेदिष्ठ के भ्रातृगण ने ब्रह्मचर्य के रूप में वास करने वाले नाभानेदिष्ठ को पैतृक दाय (भाग) नहीं दिया। उसने अपने पिता से कहा। उसके पिता ने उससे कहा – अङ्गिरस स्वर्गलोक-प्राप्ति के लिये सत्र (अनुष्ठान) हेतु सन्नद्ध हैं। वे पांच दिन तो सत्र करते हैं पर छठे दिन आकर मोहित हो जाते हैं। मन्त्रों की अधिकता के प्रयोग से भ्रान्त हो जाते हैं। उन महर्षियों के पास छठे दिन जाकर तुम दो सूक्तों का शंसन करो (कथन करो या पाठ करो)। स्वर्ग जाते हुये तुम्हें सहस्त्र सत्र परिवेषण (सहस्र सत्रों में दिये जाने वाला) धन देंगे। शंसन सूक्त कथन के बाद अङ्गिरस ने नाभानेदिष्ठ को विविध धन दिये[४]। अङ्गिरसों और आदित्यों के स्वर्गगमन के प्रति अङ्गिरसों ने अग्नि से कहा – स्वर्ग लोक जाने के लिये कल सुत्यांशंसन करेंगे।

---

१. श.ब्रा. १.४.१.२५

२. ऐ.ब्रा. १.१६

३. ऐ.ब्रा. ४.१७, श.ब्रा. १२.२.२.९; तै.सं. २.२.३.५-६

४. ऐ.ब्रा. ५.१४

पर आदित्यों ने तत्काल सुत्या का प्रकथन करो, ऐसी प्रार्थना अग्नि से की। अग्नि ने स्वीकार कर ली। अङ्गिरसों ने आदित्यों से यज्ञ सम्पन्न कराया। पर उनके द्वारा दी गई संपूर्ण भूमि रूपी दक्षिणा ग्रहण नहीं की[१]।

अङ्गिरस देवता भी हैं[२]। इसके बाद मेखला छोड़ते हैं। अङ्गिरसों ने दीक्षितों को क्षीणबलवाला समझ उन लोगों ने उन्हें व्रत के अतिरिक्त अशन की कोई अन्य कल्पना (विकल्प) नहीं की। उन्होंने इस ऊर्जा का दर्शन किया। यह दर्शन ऊर्जा की सम्यक् प्राप्ति द्वारा प्राप्त किया। उसी प्रकार मध्य से अपनी ऊर्जा को धारण करता है। उस सम्यक् प्राप्ति के द्वारा सम्प्राप्ति करता है[३]। देवताओं ने वीर्य उत्पन्न किया। उससे अङ्गार हुये, अङ्गारों से अङ्गिरस उत्पन्न हुये[४]। अङ्गिरसों ने स्वर्ग लोक जाते हुये जल में दीक्षा और तप को प्रविष्ट कर दिया जिससे पुण्डरीक (कमल) की उत्पत्ति हुई[५]। अङ्गिरा चतुर्थ वेद के प्रवर्तक आचार्य हैं। उनके कुल में उत्पन्न सभी अङ्गिरस कहे जाते हैं[६]। इष्टकाओं (ईंटों) के उपधान (संस्थापन) में अङ्गिरस देवता धिष्णिय अग्नियों के साथ आयें। अङ्गिरसों ने स्वर्ग जाते हुये राक्षसों का पीछा किया। [७]हरिवर्ण ने उस सामस्तोत्र से राक्षसों को नष्ट किया जो साम राक्षसों के नष्ट करने के लिये थे[८]। अङ्गिरसों ने सत्र आरम्भ किया। स्वर्ग लोक उनके लिये प्राप्त था।

---

१. तत्रैव ६.३४-४५
२. तत्रैव ८.१२, १४, १७, १९
३. श.ब्रा. ३.२.१.१०
४. तत्रैव ४.५.१.८
५. तै.ब्रा. १.८.२.१
६. तत्रैव २.१.१.१ सायणः
७. तै.आ. ३.८.१
८. तां.ब्रा. ८.९.५

पर उन लोगों को देवयान मार्ग का ज्ञान न था। कल्याण आङ्गिरस ने ऊर्णायु गन्धर्व से देवयान मार्ग जानकर अङ्गिरसों को बताया[१]। अङ्गिरसों का व्रत उत्कृष्ट था क्योंकि अग्नि के अन्वाधान या अग्नि का ग्रहण इस मन्त्र से करते हैं "हे व्रतों के स्वामी अग्ने भृगुओं और अङ्गिरसों के व्रत से तुम्हारा आधान (ग्रहण) करता हूँ[२]। जिस शत्रु के प्रति अभिव्याहरण (अभिचार या शापकथन) करना हो उसके लिए अङ्गिरस के उग्र मन से तुम्हारा ध्यान करता हूँ" ऐसा ध्यान करे[३]। अङ्गिरसों का एक साम गोष्ठसाम कहा जाता है[४]। आर्षेय ब्राह्मण में अङ्गिरस के लिए उत्सेध और निषेध दोनों हैं[५]। इसी ब्राह्मण में अन्यत्र अङ्गिरसों के लिये केवल निषेध है[६]। जैमिनीयार्षेय ब्राह्मण में अङ्गिरसों के तीन संक्रोश होते हैं[७]। जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण में कहा गया है कि तुम प्रातः अन्धकार दूर होने पर सविता के रूप में रहते हो। अपररात्र या रात्रि के द्वितीय भाग में अङ्गिरा के रूप में रहते हो[८]।

अङ्गिरा ऋषि थे इसका पुष्ट प्रमाण शाङ्खायन आरण्यक में है। अहः यज्ञविशेष की विधि इन्द्र ने अङ्गिरा के लिये कही और अङ्गिरा ने दीर्घतमस् के लिये। दीर्घतमा ऋषि दश पुरुष आयुष्य तक जीवित रहे।

इस संबंध में ऋषि का कथन है – "दीर्घतमा मामतेयो जुजुर्वान् दशमे युगे"। दीर्घतमा ममता का पुत्र दशम युग तक जीवन धारण

---

१. तत्रैव १२.११.१०

२. तै.ब्रा. १.१.४.८

३. तै.आ. ४.३८.१, वनदुर्गोपनिषत्, पृ. ४६४, १४ पंक्ति

४. तां.ब्रा. १३.९.२४

५. आ. १.४२०, ५१४

६. आ. १.४२५, ५१२

७. जै.आ. १.५२५

८. जै.उ. ४.५.१.३

करता रहा। कौषीतकि नामक आचार्य का कथन है कि आयुष्य की कामना करने वाले के लिये यह शस्त्र अर्थात् "दीर्घतमा" मन्त्र है। जो विद्वान् इस अहः यज्ञ विशेष का शंसन करता है, इस लोक में समस्त आयु प्राप्त कर अमृतत्व की प्राप्ति करता है तथा स्वर्गलोक में क्षय रहित वास करता है[१]।

बल नामक कोई असुर अङ्गिरसों की गायों को चुराकर किसी बिल में रखकर छिप गया था। इन्द्र ने यह वृत्तान्त जान कर बल को मारकर अङ्गिरस के लिये गायें प्रदान कर दीं[२]। अङ्गिरस ऋषियों का साद्यस्क्र एकाह यज्ञ है। ताण्ड्य ब्राह्मण में – आदित्य और अङ्गिरस दोनों ने साद्यस्क्र एकाह सत्र का अनुष्ठान प्रारम्भ किया। आदित्यों का २१ दिन का सत्र तथा अङ्गिरसों का १२ दिन का सत्र चला। आदित्य इस लोक में समृद्धियुक्त हुये और परलोक में भी। अङ्गिरस इस लोक और परलोक में भी समृद्ध हुये। दोनों सत्रों से जितनी ऋद्धि हुई उतनी ही ऋद्धि इस सत्र के अनुष्ठान करने वालों की होती है[३]।

उसी ताण्ड्य ब्राह्मण में अङ्गिरसों का पुरस्तात् पृष्ठ्य नामक यज्ञ है। पुरस्तात् पृष्ठ्य से अङ्गिरसों ने स्वर्ग लोक को आक्रान्तकर दिया। जो जन पुरस्तात् पृष्ठ्य का सत्र करते हैं, वे स्वर्ग लोक का आक्रमण अर्थात् स्वर्गलोक की उपलब्धि कर लेते हैं[४]।

प्रथम संवत्सरात्मक गवामयन यज्ञ आदित्यों द्वारा प्रारम्भ हुआ और अङ्गिरसों द्वारा इस यज्ञ से गायों की प्रजाति प्रचुर मात्रा में उत्पन्न हुई। जो भी इस गवामयन यज्ञ को करता है उसे भी प्रभूत मात्रा में गायें प्राप्त होती हैं। इस सत्र से आदित्य इस लोक में प्रतिष्ठायुत हुए। जो ऐसा यज्ञ करता है वह भी अच्छी प्रतिष्ठा की स्थिति में रहता है। इस गवामयन सत्र से ही अङ्गिरस स्वर्गलोक गये। जो इस यज्ञ को

---

१. शां.आ. २.१७

२. ऐ.ब्रा. ६.७

३. तां.ब्रा. २४.२.२

४. तत्रैव २५.२.१

करता है स्वर्ग की प्राप्ति करता है[१]। उसी ताण्ड्य ब्राह्मण में इसके द्वारा ही अङ्गिरसों ने आदित्यों की महत्ता प्राप्त की। जो व्यक्ति हीन हो, अनुज हो, पीछे उत्पन्न हुआ हो, अपने को अवर (कनिष्ठ) मानता हो, वह इस यज्ञ को करे। इससे वह प्राचीनों की प्रतिष्ठा (पदवी) प्राप्त कर लेता है। इसी के अनुष्ठान से अङ्गिरसों ने आदित्य की प्रतिष्ठा प्राप्त की[२]।

उपनिषदों में अङ्गिरा ऋषि का अस्तित्व प्रमाणित किया जा रहा है। मैत्री उपनिषत् में अङ्गिरा का नाम आया है[३]।

मुण्डकोपनिषत् में ब्रह्मा ने जिस विद्या का उपदेश अथर्वा को दिया, अथर्वा ने वह अङ्गिरा को दिया। महाशाल शौनक ने विधि-पूर्वक अङ्गिरा से प्रश्न किया - हे भगवन्! किसके जान लेने पर यह समस्त विज्ञात हो जाता है। अङ्गिरा ने शौनक से कहा कि दो विद्यायें जाननी चाहिए, ऐसा ब्रह्मविद् (ब्रह्म के जानकार) कहते हैं। वे हैं परा और अपरा। उसमें अपरा विद्या – ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष हैं। इसके बाद परा विद्या द्वारा उस अक्षर का ज्ञान प्राप्त किया जाता है[४]। तो यह सत्य पूर्व काल में अङ्गिरा ऋषि ने कहा। इन विद्याओं का अध्ययन अचीर्ण व्रत वाला व्यक्ति (अर्थात् जिसने नियमित व्रतों का अनुष्ठान नहीं किया है) नहीं कर सकता। परम ऋषियों के लिये नमस्कार है। समस्त मुण्डकोपनिषत् का प्रवक्ता (प्रवचन करने वाला) अङ्गिरा ही है[५]। आत्मोपनिषत् में यह विशेषतया तथ्य निरूपित किया गया है कि अङ्गिरा तीन आकार-प्रकार से उत्पन्न हुए – आत्मा, अन्तरात्मा और

---

१. तत्रैव २६.१६.१-२

२. तत्रैव १६.१४.१

३. मैत्रि. ७.५

४. मुं. १.१.२, १.१.३-५

५. तत्रैव ३.२.११

परमात्मा के रूप में[१]। छान्दोग्य उपनिषत् के अनुसार अङ्गिरा ने उस उद्गीथ ब्रह्म की उपासना की। इसी कारण उसे अङ्गिरा कहा जाता है जिसका अर्थ यह है कि अङ्गों का वह रस है[२]।

ब्रह्मोपनिषत् में कथन है कि शौनक महाशाल ने अङ्गिरस भगवान् पिप्पलाद से प्रश्न किया[३]। अथर्व शिखोपनिषत् में पिप्पलाद अङ्गिरा और सनत्कुमार ने अथर्वा भगवान् से प्रश्न किया[४]। दोनों उपनिषदों में आया पिप्पलाद अङ्गिरा गोत्रोत्पन्न है।

प्रणवोपनिषत् में कथन है कि अथर्वन् चन्द्रमा देवता है और आपः (जल) स्थान है। **"शन्नो देवी:०"** इस मन्त्र से प्रारंभ कर अथर्व वेद का अध्ययन किया जाता है। जल से स्थावर-जङ्गम समस्त भूतग्राम (प्राणि समूह) उत्पन्न होता है। इस कारण समस्त प्राणी जलमय हैं। समस्त प्राणी या संसार भृगु और अङ्गिरामय हैं। तीनों वेद भृगु और अङ्गिरा के अन्तः स्थित हैं। इस प्रकार जल ही प्रकृति है। जल और ऊँकार का यह सब जगत् व्यास है, विस्तार है। इस उपनिषत् में अङ्गिरस् की उत्कृष्ट महिमा प्रकट हो रही है। तीनों वेद अङ्गिरसों के आश्रित हैं[५]। चतुर्थ अथर्ववेद तो अङ्गिरस का है ही।

निष्कर्ष – अङ्गिरस ७ ऋषियों तथा देवों का गण है। अङ्गिरा सब में वरिष्ठ है। अङ्गिरस ने जल में प्रविष्ट अग्नि को प्राप्त किया। पुनः नष्ट होने पर वन में खोजते हुए वनस्पति में प्राप्त किया। अतः अरणि से अग्नि उत्पन्न होता है। सब से पहले अङ्गिरस ने अग्नि उत्पन्न किया। अङ्गिरस अपहृत गायों के पदचिह्न का ज्ञाता है। अङ्गिरस ने पणि नामक असुरों के मुख तोड़े, पर्वत-भेदन किया, पश्चात् गायों की

---

१. आ. १

२. छां. १.२.१०

३. ब्र. १

४. अ. १

५. प्रण. पृ. ३७, पङ्क्तिः ३

प्राप्ति की। देवताओं की स्तुति से अन्धकार दूर हुआ। इनकी स्तुति से मेधा की प्राप्ति होती है। ज्योति से अङ्गिरस ने महिमा प्राप्त की। अङ्गिरस देव भी थे। आदित्य देवों और अङ्गिरस देवों में स्वर्ग-प्राप्ति हेतु स्पर्धा हुई। अङ्गिरस अनेक यज्ञों के प्रवर्तक हैं। इनके दृष्ट मन्त्र ६ हैं। अङ्गिरस् ने यज्ञ द्वारा बल नामक असुर को नष्ट किया, ऋत द्वारा सूर्य को द्युलोक में स्थापित किया। तत्पश्चात् पृथ्वी को प्रथित (विस्तृत) किया। प्रकृष्ट तप – **भृगूणामङ्गिरसां तपसा तप्यध्वम्।** अङ्गिरस् द्वारा शत्रु-पुर-भेदन हुआ। नाभानेदिष्ठ को पितृदाय न मिलने पर अङ्गिरस द्वारा उसे सहस्रसत्र परिवेषण तथा नाभानेदिष्ठ द्वारा दो मन्त्रों का शंसन हुआ। अङ्गिरस द्वारा आदित्यों का यज्ञ कराने पर सम्पूर्ण पृथ्वीरूप दक्षिणा का अङ्गिरस् ने परित्याग, (अग्रहण, अस्वीकार) कर दिया। यह इतिहास में अभूतपूर्व घटना है क्योंकि जामदग्न्य राम-द्वारा कश्यप को पृथिवी दान करने पर दक्षिणा में पृथ्वी ग्रहण (स्वीकार) कर ली थी। अङ्गिरसों का त्याग महान् था। अङ्गिरसों द्वारा कमल की उत्पत्ति, स्वर्ग जाते हुए अङ्गिरस ने जल में दीक्षा और तप का प्रवेश किया। इससे पुण्डरीक (कमल) की उत्पत्ति हुई। अङ्गिरसों द्वारा सत्र करने से स्वर्ग प्राप्त हुआ। सूर्य उष:काल में सविता होता है, अपररात्र में अङ्गिरा होता है। इन्द्र ने इस यज्ञविशेष का प्रवचन अङ्गिरा को दिया और अङ्गिरा ने दीर्घतमा को। अत: दीर्घतमा दश पुरुष - आयु तक जीवित रहे। महाशाल शौनक ने अङ्गिरा से पूछा – भगवन्! किसके जान लेने पर समस्त जान लिया जाता है। अङ्गिरा ने उत्तर दिया – दो विद्यायें जाननी चाहिये जिसे ब्रह्मविद् बताते हैं। परा और अपरा विद्या। अपरा वेद-वेदाङ्ग है। परा वह जिसके द्वारा अक्षर जाना जाता है। मुण्डकोपनिषत् का प्रवक्ता अङ्गिरा है। अङ्गिरा तीन रूपों में है - आत्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा में है। उद्गीथ ब्रह्म की उपासना अङ्गिरा ने की। समस्त प्राणी जलमय हैं। समस्त प्राणी भृगु अङ्गिरामय हैं। तीनों वेद भृगु और अङ्गिरा के आश्रित हैं। चतुर्थ अथर्ववेद तो है ही।

वेदविस्तार में गोतमों का योगदान

गोत्रप्रवर्तक प्रसिद्ध गोतम ऋषि के पिता का नाम रहूगण था। इस पितृ-नाम के कारण ही गोतम – राहूगण गोतम नाम से ब्राह्मण ग्रन्थों में व्यवहृत हुए हैं। रहूगण तथा राहूगण गोतम का वेदोपबृंहण में सहयोग तथा दोनों का परिचय पूर्व में दिया गया है। महर्षि अङ्गिरा का भी परिचय दिया गया। प्रस्तुत प्रकरण में गोतम पुत्र (वामदेव तथा नोधस्) दोनों का तथा दोनों के पुत्र-पौत्रों का वेद में सहयोग विषय पर विचार किया जा रहा है।

सर्वप्रथम वेदमन्त्रों से प्रमाणित किसी प्रकार से एकत्रीकृत वंशक्रम का निर्देश किया जा रहा है, जिससे सुलभता से उनके विषय में ज्ञान प्राप्त हो जाए। इस वंशक्रम का उल्लेख कहीं भी नहीं मिलता। उन ऋषियों के नामों के साथ उन के द्वारा दृष्ट मन्त्रों की संख्या भी निर्दिष्ट हो रही है[1] –
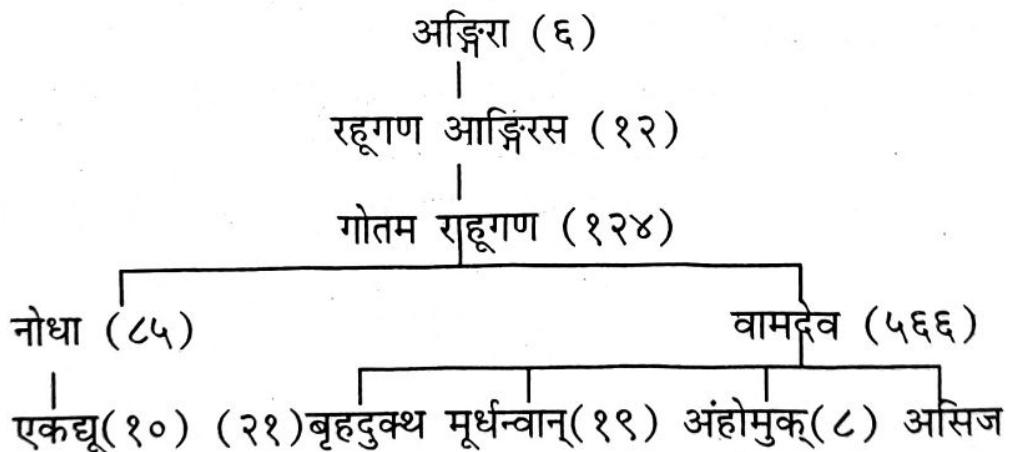
१. सिद्धिजा (शा. स्नातकमहाविद्यालयसीधी) पत्रिका क्रमाङ्क ७, १९६६-६७.

सर्वानुक्रम में "रहूगण आङ्गिरस" इस प्रकार का पाठ है[१]। इससे यह प्रतीत होता है कि रहूगण अङ्गिरा के पुत्र थे अथवा उनके कुल में उत्पन्न होकर उन्होंने ख्याति प्राप्त की। इन दोनों पक्षों में प्रथम मत ही युक्ततर प्रतीत हो रहा है। क्योंकि अङ्गिरा और रहूगण के मध्य में किसी की स्थिति वैदिक वाङ्मय में उपलब्ध नहीं होती। सर्वानुक्रम में अङ्गिरा का नाम उपलब्ध नहीं होता। अतः यह अङ्गिरा किसी भी एक सूक्त का द्रष्टा प्रतीत नहीं होता। इस प्रकरण में पाश्चात्य विद्वान् कीथ तथा मैकडानल आदि अङ्गिरस की ऐतिहासिकता में संदेह करते हैं[२]।

उनका यह मत अत्यन्त आलोचना के योग्य है, क्योंकि अङ्गिरस देवता के ६ मन्त्र उनके द्वारा दृष्ट हैं और वह पूरा एक सूक्त है[३]। अङ्गिरा का पूरा परिचय दिया जा चुका है। गोतमपुत्र वामदेव ऋग्वेद चतुर्थ मण्डल के द्रष्टा हैं और उस चतुर्थ मण्डल को पाश्चात्य विद्वान् प्राचीनतम मानते हैं। वामदेव से प्राचीनतम राहूगण गोतम हैं। राहूगण गोतम से पूर्व अङ्गिरस का अस्तित्व तो गोतम-दृष्ट मन्त्र से ही प्रकट होता है[४]। सायण ने गोतम राहूगण के पुत्र नोधा की व्युत्पत्ति करते हुए कहा है[५] कि नूतन स्तोत्र धारण करने के कारण ही नोधा नाम पड़ा है। इसमें धाञ् धातु से असुन् प्रत्यय हुआ है। नव शब्द का नो भाव हुआ[६]। अतः नोधा नाम सिद्ध हुआ। यास्क के द्वारा नवन धारण करने वाला "नवनं दधाति" – यह व्याख्या की गई है[७]। सर्वानुक्रम से यह ज्ञात होता है कि इन्होंने प्रथम मण्डल के ५८ वें सूक्त से ६४ वें सूक्त तक के समस्त ७४ मन्त्रों का दर्शन किया तथा अष्टम मण्डल ८८ वें

---

१. ऋग्वेद सायण भाष्य-पञ्चम भाग-सूचीखण्ड- (सर्वानुक्रम)-ऋषिसूची पृ.१०२१

२. वैदिक कोश-कीथ मैकडानल- 'अङ्गिरस' पद

३. क्र.सं. १०.६२.१-६

४. ऋ.सं. १.७८.३

५. ऋ.सं. १.१२४.४. सायणभाष्य

६. ऋ.सं. १.६१.१४ सायणभाष्य

७. निरुक्त ४.१६

सूक्त के ६ मन्त्रों का तथा नवम मण्डल के ९३ वें सूक्त के ५ मन्त्रों का दर्शन किया। इस प्रकार कुल ८५ मन्त्रों के द्रष्टा नोधा ऋषि हैं[1]।

ऋग्वेद में इनका नाम ४ बार तथा अथर्ववेद में एक बार आया है। ऋग्वेद में नोधा ऋषि इन्द्र की स्तुति करते हैं।

१. इस इन्द्र के पक्षच्छेदन के भय से पर्वत भी निश्चल होकर अपने अपने स्थान में रहते हैं। प्रादुर्भूत हुए इन्द्र से द्युलोक और पृथिवी लोक कांपते हैं। कमनीय के दु:ख दूर करने वाले रक्षण कार्य के लिए पुनः-पुनः स्तुति करते हुए नोधा ऋषि उसी समय वीर्यवान् हो गए (ऋ.सं. १.६१.१४)।

२. हे बलवान् इन्द्र! गोतम ऋषि के पुत्र नोधा ऋषि ने तुम्हारे लिये नूतन सूक्त-रूप स्तोत्र हम लोगों के लिये किया। अतः हमारे द्वारा किये गये स्तोत्र से स्तुत और बुद्धि और कर्म से धन प्राप्त करने वाला इन्द्र प्रातः काल शीघ्र आये (ऋ.सं. १.६२.१३)।

३. पूर्वार्द्ध में नोधा की स्तुति की गई है। स्तुत होने पर परार्द्ध से नोधा ने वायु की स्तुति की - हे नोधा! मनोरथ की वर्षा करने वाले पुष्प तथा फल के कर्ता मरुत्समूह के लिये स्तोत्र प्रदान करो (ऋ.सं. १.६४.१)। स्तुति होने पर प्रेरित नोधा ने कहा - बुद्धिमान् सुन्दर अंगुलियों से युक्त मैं मन से स्तुतियुक्त वाणी व्यक्त करता हूँ। जो देवता को प्रत्यक्ष करने में समर्थ है। यज्ञयोग्य स्तोत्रों से मन से मरुद्गण की स्तुति करता हूँ।

४. उषा सबके द्वारा पास में ही देखी जाती है। जैसे सूर्य का वक्ष स्थानीय किरण-समूह द्वारा प्रकाशमान देखा जाता है, जैसे श्वेत जलचर अपने वक्षस्थान को प्रकाशित करता हुआ दिखाई देता है। जैसे नोधा ऋषि ने देवताओं की स्तुति के बहाने अनेक प्रकार के मन्त्रों से अपने अभिलषित का आविष्कार किया, उसी प्रकार इस उषा ने भी स्वकीय लोकप्रिय तेज को आविष्कृत किया। जिस प्रकार माता सोते

---

१. ऋग्वेद-सायणभाष्य पञ्चम भाग, सूचीखण्ड (सर्वानुक्रम) पृ. १०५४, १०९८

हुए पुत्रों को उषः काल में जगा देती है, उसी तरह यह उषा भुवनरूपी गृह में समस्त प्राणियों को जगाती हुई देखी जाती है (ऋ. १.१२४.४)।

५. अथर्ववेद में नोधा का नाम आया है, पर वह ऋग्वेदीय मन्त्र ही है[१]। गोतमों की सामवेद संहिता की गौतमी शाखा थी। गोतमों के बहुत से साम उपलब्ध होते हैं। अथर्ववेद में नोधस् साम का विधान है[२]। ऐतरेय ब्राह्मण में "इममिन्द्र सुतं पिब" इस ऋचा पर उत्पन्न साम नौधस् साम है[३]। वही "अस्मा इदु प्रतवसे तुराय" इस मन्त्र का द्रष्टा नोधा ऋषि है[४]। यहीं नौधस साम भी है[५]। ताण्ड्य ब्राह्मण में भी इनका साम उपलब्ध है[६]।

एकद्यू अकेला ही नोधा का पुत्र था, ऐसा ऋग्वेद से ज्ञात होता है[७]। एक ही परमात्मा से जो क्रीडा करता है, द्योतित होता है, मोद प्राप्त करता है, कान्तिमान् होता है उसे एकद्यू कहते हैं। दिव् धातु से क्विप् प्रत्यय करने पर, ऊठ् सम्प्रसारण करने पर शब्दसिद्धि होती है। आत्माराम (ऋषि में) आत्मा में ही रमण करता है[८]।

ऋग्वेद के अष्टम मण्डल ८० वें सूक्त का द्रष्टा यह ऋषि है। यह समस्त १० मन्त्रों का द्रष्टा है। ऋग्वेद के एक मन्त्र में इनका नाम आया है।

ऋग्वेद (८.८०.१०) मन्त्र में एकद्यू का कथन है – हे देव अमृतरूप आपको यह ऋषि एकद्यू बढ़ा रहा है, स्तुति के द्वारा तथा

---

१. अ.वे. २०.३५.१४

२. अ.सं. १५.२.२२-२४, २५.४.११-१२

३. ऐ.ब्रा. ४.२७

४. ऐ.ब्रा. ६.१८.१४

५. ऐ.ब्रा. ८.१२, १७

६. तां.ब्रा. ७.१०.१०

७. ऋ.सं. ८.८०.१०

८. वाचस्पत्यम् २ भा., पृ. १४७३.

सोम के द्वारा आपको प्रसन्न कर रहा है। हे देवियों! स्तुति और सोम द्वारा तुम्हारी अभिवृद्धि कर रहा है और सोम द्वारा तृप्त भी। मुझे प्रशस्त धन द्वारा अभिवृद्धि प्रदान करें। कर्मधन इन्द्र प्रातः काल आ जायें। अनुक्रमणिका में "न ह्यन्यं दशैकद्यूर्नौधसः" यह लेख है[१]।

नाम अनेक बार आया है। पर वहाँ नौधस शब्दों से नौधस साम की प्रतीति होती है[२]। इस एकद्यू नोधस् पुत्र का किस नाम वाला पुत्र हुआ, यह अज्ञात है, अन्वेषणीय है।

ऐतरेयारण्यक में देवताओं ने वामदेव शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की है – हम सभी देवताओं के मध्य वननीय तथा भजनीय है, श्रेष्ठ तथा सेवनीय है। देवताओं में वाम है, इस व्युत्पत्ति से वामदेव नाम संपन्न हुआ[३]। सायण ने वामदेव पद का निर्वचन इस प्रकार दिखाया है। वामदेव नाम है, वननीय है, द्योतक है। तत्त्व के विषय में जिसे बोध हुआ है, ज्ञान हुआ है[४]। वामदेव ने गर्भावस्था में ही तत्त्व-ज्ञान प्राप्त कर लिया था। अतः उन्हें स्वान्तः सर्वात्मना प्राप्त होने से ऐसा दर्शन दिया कि मैं ही मनु हुआ था, मैं ही सूर्य[५]।

वामदेव के पिता राहूगण गोतम थे, यह ऋग्वेद के वामदेव द्वारा दृष्ट मन्त्र से प्रमाणित होता है[६]। वह स्वयं दो मन्त्रों में अपने गोतम

---

१. ऋ. ८.८०.१ अनुक्रमणिका, सायणभाष्य

२. अथ.सं. १५.२.२२-२४, १५.४, ११-१२

३. तं देवा अब्रुवन् अयं वै नः सर्वेषां वाम इति तं यद्देवा अब्रुवन् अयं वै नः सर्वेषां वाम इति तस्माद्वामदेवस्तस्माद् वामदेव इत्याचक्षत एतमेव सन्तम्। ऐ.आ. २.२.१

४. अ.सं. १८.३.१५ सायणभाष्य

५. शतपथब्राह्मणेऽप्येवम् – तद्धैतत्पश्यन्नृषिर्वामदेवः प्रतिपेदे। अहं मनुरभवं सूर्यश्च। श.ब्रा. १४.४.२.२२

६. ऋ.सं. ४.४.११ तन्मा पितुर्गोतमादन्वियाय।

नाम का उपयोग करते हैं[१] इनका नाम ऋग्वेद में एक बार तथा अथर्ववेद में दो बार उपलब्ध होता है :-

ऋग्वेद में वामदेव इन्द्र की स्तुति करते हैं :-

(१) हे इन्द्र! आप मन्त्रद्रष्टा वामदेव के कर्मों के रक्षक हो। हिंसारहित होकर तुम युद्ध में मेरे मित्र हो। हम लोग तुम्हें प्रकृष्टतम ज्ञान वाला समझ कर तुम्हारे पास आ रहे हैं (ऋ.सं. ४.१६.१८)।

हे इन्द्र! तुम स्तुति करने वाले के लिये महत् शंसन से युक्त हो जाओ। अर्थात् स्तोता को प्रशस्त करो, समस्त कल्याणों से युक्त करो।

(२) अथर्ववेद में कहा गया है - (क) कश्यप और वामदेव हम लोगों की रक्षा करें (१८.३.१५)। (ख) गोतम तथा वामदेव अथवा वामदेव गौतम हमें सुख प्रदान करें (१८.३.१६)।

एक मन्त्र में वामदेव का वैशिष्ट्य-वर्णन किया गया है। उस मन्त्र में वामदेव कहते हैं कि मैंने गर्भ में ही रहकर इन अग्नि, वायु, आदित्य आदि के समस्त जन्मों को जान लिया था[२]।

इस वामदेव ने ऋग्वेद के चतुर्थमण्डल के तीन सूक्तों को छोड़कर समस्त ५५ सूक्त वाले चतुर्थमण्डल का दर्शन किया[३]। वहाँ के ५६६ मन्त्र वामदेव द्वारा ही दृष्ट हैं। चतुर्थ मण्डल के द्रष्टा ऋषि वामदेव ही हैं[४]। चतुर्थ मण्डल का प्रसिद्ध रक्षोहन् संज्ञक चतुर्थ सूक्त

---

१. ऋ. ४.३२.९ तथा ४.३२.१२

२. गर्भे नु सन्नन्वेषामवेदमहं देवानां जनिमानि विश्वा।
शतं मा पुर आयसीररक्षन्नध श्येनो जवसा निरदीयम्।
ऋ. ४.२७.१, ऐ.आ. २.२.१, ऐ.उ. २.५

३. ऋ.सं. सायणभाष्य ५ भाग, सर्वानुक्रम। पृ. १०७१-७४

४. ऐ.आ. २.२.१

के द्रष्टा यही हैं[१]। गोतमपुत्र गोतम इन्द्र की स्तुति करने वाले तथा स्तोम करने वाले हैं, यह वहीं से ज्ञात होता है[२]।

पूर्वकाल में कभी वामदेव ने इन भूः, भुवः इत्यादि लोकों की स्रष्टि कर उनकी प्राप्ति के उपाय को सोचकर संपात सूक्तों से उन लोकों को प्राप्त कर लिया। अतः इन सूक्तों से उन लोकों की प्राप्ति हो जाती है। इस कारण इन सूक्तों का नाम संपात सूक्त हुआ[३]। इस वामदेव ने दूसरे संपात सूक्तों का भी दर्शन किया है[४]। **"वामदेव्य"** यह पद एकादश मन्त्रों में उपलब्ध होता है। पर यह सब पद साम-विषयक प्रतीत होता है[५]।

ब्राह्मण ग्रन्थों में भी वामदेव पद साम-संबंधी ही है[६]

बृहद्देवता में एक प्रकरण में इन्द्र ने युद्ध के लिये इन वामदेव को बुलाया। वहां दस दिन तक रात-दिन युद्ध में वामदेव ने इन्द्र को जीत लिया[७]। वामदेव के चार पुत्र प्रतीत होते हैं। १. अंहोमुक् वामदेव्य २. मूर्धन्वान् वामदेव्य ३. असिज ४. बृहदुक्थ।

---

१. काठ.सं. १०.५ मै.सं. २.१.११, ३.२.६

२. ऋ. ४.३२.९, १२

३. ऐ.ब्रा. ४.३०.२

४. ऐ.ब्रा. ६.१८.१-२

५. यं.सं. १२.४, अ. ४, ३४१; ८.११.६, १०; १५.२.१०; ३.५.४.५-६; १५.२.१२; १५.२.११; ८.११.८

६. तां.ब्रा. ७.८.१; ७.९.९; ४.८.१०; १६.११.११ तै.ब्रा. ११.८.२, तां.ब्रा. ७.८.२; ४.८.१५ श.ब्रा. ५.१.३.१२.; १३.३.३.४; ९.१.२.३८, तां.ब्रा. ४.८.१५. ऐ.ब्रा. ३.४६ तै.ब्रा. १.१.८.२.

७. अपना हित चाहने वाली अदिति ने अपने पुत्र इन्द्र को युद्धार्थ प्रशिक्षण दिया। इन्द्र ने तैयार होकर युद्ध के लिये वामदेव ऋषि का आह्वान किया। वामदेव ने अपनी आत्मा में बल-संपादन कर दस रात और दस दिन इन्द्र के साथ युद्ध करते हुए बल से इन्द्र को जीत लिया। बृ.दे. १३१, १३२

१. **अंहोमुक्** – सर्वानुक्रम से यह विदित होता है कि यह ऋषि ऋग्वेद के दशममण्डल के १२६ वें संपूर्ण सूक्त के समस्त ८ मन्त्रों का द्रष्टा ऋषि है[१]। वामदेव्य इस विशेषण से ऐसा परिलक्षित होता है कि यह वामदेव पुत्र है। अंहोमुक् नाम का निर्वचन – (१) अंहस् पाप से पुरुष को पृथक् करता है, मुक्त करता है इसलिये अंहोमुक् नाम सिद्ध होता[२] है। (२) अंहस् पापों से मोचन कराने वाला होने के कारण इसका नाम अंहोमुक् है[३]।

२. **मूर्धन्वान् वामदेव्य** – सर्वानुक्रम से विदित होता है कि ऋक्संहिता दशम मण्डल के ८८ वें सूक्त के समस्त १९ मन्त्रों का द्रष्टा ऋषि है[४]। वामदेव्य विशेषण से यह वामदेवपुत्र प्रतीत होता है।

३. **असिज** – वायु पुराण से जाना जाता है कि यह बृहदुक्थ भ्राता और वामदेव का पुत्र था[५]। वेदों में, वेदाङ्गों (श्रौतसूत्रों) में उशिज ऋषि प्रवरगणना में आते हैं। कक्षीवान् अपने को दैर्घतमस और औशिज–उशिज पुत्र मानते हैं। अतः उशिज ऋषि वैदिक वाङ्मय में आते हैं। संभवतः यह उशिज पुराणों में उ के स्थान पर अ रख देने से असिज हो गया है, मुद्रण की अशुद्धियों से उशिज के संबंध में आगे के ऋषियों में परिचय दिया जायेगा। यदि यह असिज, उशिज है तो कक्षीवान् उसके पुत्र हैं। तब वामदेव के पौत्र कक्षीवान् हुए। पर मन्त्र में वामदेव ने अपने को कक्षीवान् (पूर्व उत्पन्न) ऋषि बताया है, इससे प्रतीत होता है कि कक्षीवान् वामदेव से पूर्वतन ऋषि हैं। अतः कक्षीवान् दीर्घतमा के पुत्र हैं। इस समस्या का समाधान यथास्थल किया जायेगा।

---

१. ऋग्वेद संहिता, सायणभाष्य, पञ्चम भाग, सूचीखण्ड, सर्वानुक्रम ९.११.१६
२. माध्यन्दिन संहिता ४.१३ महीधर–भाष्य।
३. अथर्ववेद संहिता १९.४२.३ सायण–भाष्य।
४. ऋ.संहिता सायण–भाष्य पञ्चचमखण्ड सूची सर्वानुक्रम पृ. १११६
५. वायुपुराण ६५. १००–२

४. **बृहदुक्थ** – इस नाम की व्युत्पत्ति इस प्रकार की जा रही है – बृहत् (महान्) उक्थ (शस्त्र, स्तोत्र) जिसके हों वह बृहदुक्थ कहलाता है[1]। बृहदुक्थ अर्थात् बृहत्स्तोत्र वाले कहे गये हैं[2]।

इनका नाम ऋग्वेद में ३ बार तथा माध्यन्दिन संहिता में एक बार उपलब्ध होता है – ऋ. सं. ५.१९.३; १०.५४.६; १०.५६.७

इन मन्त्रों का अर्थ क्रमशः यह है –

(१) इस मन्त्र में यह ऋषि ऋत्विक् रूप में उपलब्ध होते हैं।

(२) इस ऋक् में वामदेवपुत्र बृहदुक्थ कहते हैं – इन्द्र ने आदित्यादि तेज में तेज धारण किया। जिसने मधुर रस से सोमादि पदार्थों को युक्त किया अथवा आदित्य के साथ जल की सृष्टि की उस इन्द्र का प्रीतिजनक बल शत्रुओं का शोषक है। यह मननीय स्तोत्र है। वह मन्त्रद्रष्टा बृहदुक्थ से प्रचुर शस्त्र-स्तोत्रों वाले इस ऋषि से अर्थात् मेरे द्वारा कहा गया है।

(३) नावा न क्षोदः प्रदिशः पृथिव्याः –

इस मन्त्र में जिस तरह मनुष्य नौका के द्वारा जल को पार कर जाते हैं, कल्याण के द्वारा स्वस्ति और क्षेम के द्वारा समस्त दुःखों को पार कर जाते हैं, उसी प्रकार बृहदुक्थ ऋषि अपनी प्रजा, अपनी सन्तति मृत वाजी नामक पुत्र को अपने महत्त्व से अवर अग्नि आदि देवताओं में स्थापित कर रहा है तथा पर दिव्य सूर्य आदि में स्थापित किया, ऐसा ऋषि कह रहा है अथवा स्वयं ही अपनी आत्मा को परोक्ष रूप में कह रहा है।

माध्यन्दिन संहिता में यह नाम बृहत् शस्त्र वाले अग्नि के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है[3]। ऐतरेय ब्राह्मण से यह विदित

---

१. मा.सं. ११.७६ महीधर-भाष्य

२. क्र.सं. ५.१९.३ सायण-भाष्य

३. मा.सं. ११.७६

होता है कि बृहदुक्थ ऋषि ने दुर्मुख पाञ्चाल के लिये ऐन्द्र महाभिषेक का प्रवचन किया। इस कारण दुर्मुख राजा ने विद्या के द्वारा महाभिषेक के ज्ञान से समस्त दिशाओं में जाकर समस्त पृथिवी को जीतते हुए पृथिवी का भ्रमण किया[१]। शतपथ ब्राह्मण से ज्ञात होता है कि इस ऋषि ने "समिद्धो अञ्जन् कृदरंमतीनां" आदि आप्री मन्त्रों का दर्शन किया। वहां पर यह बृहदुक्थ वामदेवपुत्र अथवा सामुद्रि अश्व ने आप्री सूक्त का दर्शन किया[२]। इससे स्पष्ट होता है कि वामदेव्य, वामदेव का पुत्र बृहदुक्थ है। ताण्ड्य ब्राह्मण में बार्हदुक्थ साम है बृहदुक्थ वाम्नेय ने अन्न के पुरोधाम को प्राप्त किया। ब्रह्मन् का पुरोधा अन्न है, अन्नाद्य के अस्तित्व के लिये[३]।

इस उद्धरण से ये वाम्नी वंश में उत्पन्न होने से वाम्नेय प्रतीत होते हैं। पर हापकिंस महोदय की सम्मति से वामदेव्य अर्थात् वामदेव के पुत्र हैं[४]। वाजीबृहदुक्थ का यह एक ही वाजिनामक पुत्र है। यह बृहदुक्थ स्वकीय मृतपुत्र वाजी के प्रति कहते हैं – हे मृतपुत्र अग्नि नामक ज्योति एक अंश है, वायु नामक ज्योति एक अंश है और आदित्य नामक ज्योति एक अंश है। इस प्रकार अग्नि, वायु, आदित्य तीनों में, तीनों अंशों में, तीनों ज्योतियों में तेज से, अपनी आत्मा द्वारा तेज में प्रवेश कर जाओ[५]।

एक अन्य मन्त्र में कहते हैं कि जिस तरह मनुष्य नाव से जल पार कर जाते हैं, उसी प्रकार बृहदुक्थ ने वाजीपुत्र को अग्नि आदि

---

१. ऐ.ब्रा. ८.२३. एतं ह वा ऐन्द्रं महाभिषेकं बृहदुक्थ ऋषिर्दुर्मुखाय पाञ्चालाय प्रोवाच तस्माद् दुर्मुखः पाञ्चलों राजा सन्विद्यया समन्तं सर्वतः पृथिवीं जयन्परीयाय।

२. श.ब्रा. १३.२.२.१४

३. तां.ब्रा. १४.९.३७-३८

४. वैदिककोशः सूर्यकान्त, पृ. ३३७ बृहदुक्थपदम्।

५. ऋ. १०.५६. १-३

और सूर्य आदि में स्थापित किया[१]। वाजी के पश्चात् वंशक्रम का ज्ञान नहीं होता।

अतः रहूगण से प्रारम्भ कर बृहदुक्थ पर्यन्त अष्ट गोतमों के चार पीढ़ियों तक ऋग्वेद के ९३५ मन्त्र दृष्ट हैं। इन मन्त्रों से उन गोतमों का वेदोपबृंहण में विशिष्ट योगदान परिलक्षित होता है।

निष्कर्ष

नोधा वीर्यवान् हुए। नोधा ऋषि ने देवस्तुति के बहाने अपने समस्त अभिलषित का आविष्कार किया।

एकद्यु नाम का निर्वचन – एक ही परमात्मा से क्रीड़ा करता है, द्योतित होता है, मोद प्राप्त करता है, कान्तिमान् होता है उसे एकद्यु कहते हैं। आत्माराम ऋषि में, आत्मा में ही रमण करता है।

वामदेव ने – देवों में भजनीय – गर्भावस्था में ही तत्त्व-ज्ञान का दर्शन कर अपने को सर्वात्मा के रूप में घोषित किया। मैं ही मनु, मैं ही सूर्य हुआ। **"तन्मा पितु गोंतमादन्वियाय"**। मुझे ही उशना देखें भूर्भुवः लोकों की सृष्टि कर संपात सूक्त से उन लोकों को प्राप्त किया।

वामदेव को इन्द्र ने युद्ध करने हेतु बुलाया। दस दिन-रात युद्ध करने पर वामदेव ने इन्द्र को जीत लिया।

अंहोमुक् – पाप से पुरुष को पृथक् करता है, मुक्त करता है या पापों को छुड़ाने वाला।

बृहदुक्थ – बृहत्स्तोत्र, बृहदुक्थ ने दुर्मुख पाञ्चाल को ऐन्द्र महाभिषेक का प्रवचन किया। इससे पाञ्चाल दुर्मुख राजा विद्या द्वारा महाभिषेक के ज्ञान से समस्त पृथ्वी का विजेता हुआ। बृहदुक्थ ने अपने साम से अन्न के पुरोधाम को प्राप्त किया। ब्रह्मन् का पुरोधा अन्न है।

---

१. ऋ. १०.५६.७

वेदवेदाङ्गों में गोतमों का प्रवक्तृत्व

गोतम के पिता रहूगण से तथा गोतम के पितामह अङ्गिरासे बृहदुक्थ तथा वाजी तक एकादश ऋषियों का परिचय दिया गया। इस समय उनसे भिन्न ऋषियों का परिचय दिया जा रहा है।

१. उचथः - ऋग्वेद में यह नाम उपलब्ध होता है[१]। सायण का मत है कि इस नाम के महर्षि का गोत्र में उत्पन्न होने का अस्तित्व नहीं है। यह उचथ वस्तुतः गोतम गोत्र में उत्पन्न हैं क्योंकि इसके पुत्र का नाम दीर्घतमा गोतम है। दीर्घतमस् ऋषि के द्वारा दृष्ट मन्त्र में उचथ पद का उल्लेख होने से यह ऋषि है। एक ऋक् में उचथ्य नाम का उल्लेख है[२]। सायण उस मन्त्र के भाष्य में इस ऋषि को राजा कहते हैं। पर सर्वानुक्रम[३] में ऋषि-सूची[४] में ऋषि ही मानते हैं।

उचथ ही उचथ्य आङ्गिरस था। उसमें भेद नहीं है। उचथ्य आङ्गिरस नवम मण्डल के ५० वें सूक्त से लेकर ५२ सूक्त तक १५ मन्त्रों के द्रष्टा हैं।

पद की व्युत्पत्ति - भाषण करने अर्थ में वच् धातु से उणादि से अथक् प्रत्यय करने पर "वचि स्वपि०" सूत्र से संप्रसारण करने पर शब्द की सिद्धि होती है।

---

१. कुविन्नो अग्निरुचथस्य वीरसत्। ऋं सं. १.१४३.६

२. उचथ्ये वपुषि यः स्वरालुत वायो घृतस्नाः। ऋ. ८.४६.२८

३. सर्वानुक्रम ऋ. सं. ५ भाग पृ ११०२

४. ऋ. सं. भाग पृ. १०१६

२. औचथ्यः दीर्घतमा मामतेयः - मन्त्रद्रष्टा दीर्घतमा अपने लिये औचथ इस पद का प्रयोग करते हैं[१]। सायण का ऐसा मानना है कि औचथ्य उचथपुत्र दीर्घतमा है। सूक्त में ही औचथ्य पद की व्याख्या में दीर्घतमा को सायण उचथ का पुत्र मानता है[२]। अतः स्पष्ट है कि सायण उचथ और उचथ्य दोनों नामों को एक मानता है। दीर्घतमा की माता का नाम ममता है क्योंकि अनेक स्थानों पर मामतेय पद से दीर्घतमा जाने जाते हैं[३]। मन्त्र के भाष्य मे सायण का निर्देश है - दशयुग पर्यन्त इस दीर्घतमा मामतेय (ममता पुत्र) की आयु थी[४] -

दीर्घतमा मामतेयो जुजुर्वान् दशमे युगे

यह स्पष्ट ही प्रतीत होता है कि दीर्घतमा दशम युग में जीर्णतर या अतिवृद्ध हुआ। पर इस रहस्य का प्रतिपादन (कथन) शांखायन के आरण्यक में इस प्रकार है -

इस अहः का प्रवचन इन्द्र ने अङ्गिरा को किया और अङ्गिरा ने दीर्घतमा को। दीर्घतमा दश पुरुष के आयुष्य तक जीवित रहा। दीर्घतमा शब्द ऋग्वेद में दो बार[५] तथा अथर्ववेद में एक बार आया है[६]। यह दीर्घतमा नामक ऋषि ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के १४० वें सूक्त से १६४ सूक्त तक २४२ मन्त्रों का द्रष्टा है। दोनों अश्विन ने इस दीर्घतमा की रक्षा की, यह ऋग्वेद से प्रमाणित होता है।

इस विषय में एक आख्यान कहते हैं - वृद्धावस्था के कारण जीर्ण शरीर वाले, जन्म से अन्धे, ममता-पुत्र दीर्घतमा का आदेश मानने से अर्थात् उनके वरण करने में स्वयं को असमर्थ मानते हुए अपने

---

१. दस्रा ह यद्रेक्ण औचथ्यो वाम्। ऋ. १.१५८.१

२. उपस्तुतिरौचथ्य मरुष्येन्मा। ऋ. १.१५८.४

३. ऋ. १.१४७.३१; १५२.६१; १५८.६; ४.४.१३ तै. सं. १.२.१४.५ मै. ४.११.४; काठ. सं. ६.११

४. ऋ. १.१५८.६

५. ऋ. १.१५८.६, ८.९.१०

६. अथ २०.१४८.५

गर्भ से उत्पन्न दासों ने, सेवकों ने उन्हें (दीर्घतमा को) जला डालने के लिए अग्नि में फेंक दिया[१]।

अग्नि में प्रक्षिप्त ऋषि ने अश्विन भाइयों की स्तुति की। उन दोनों देवों ने इनकी रक्षा की। इस अग्नि-प्रक्षेप से भी न मरते देख कर उसे जल में बह जाने के लिए गिरा दिया। उस जल में डूबते हुए ऋषि ने पुनः अश्विनों की स्तुति कर उन्हें संतुष्ट किया। प्रसन्न होकर अश्विनों ने उनको जल से बाहर निकाला अर्थात् उनको ऊँचे उठाकर उद्धार किया। इस प्रकार मारने की प्रक्रिया पर भी न मरने वाले अवध्य जानकर त्रैतन नामक किसी दास ने उनके शिर और वक्षः स्थल को छील डाला। इस गम्भीर घात से भी अश्विनों ने इनका पालन किया।

अग्नि की स्तुति कर इन्होंने चक्षु प्राप्त किया। यह ऋग्वेद से जाना जाता है[२]।

यहां पर इतिहास कहा जा रहा है। उचथ्य और बृहस्पति दो ऋषि थे। उचथ्य की ममता नामक भार्या थी। वह गर्भवती थी। बृहस्पति ने उसके साथ रमण किया। शुक्र-निर्गमन के अवसर पर गर्भ-स्थित वीर्य ने कहा - हे मुने! रेतस्त्याग मत करना। मैं यहां पूर्व से ही रह रहा हूँ। रेत का संकर मत करो। इस प्रकार बृहस्पति के प्रति कहे जाने पर बलात् प्रतिरुद्ध वीर्य वाले बृहस्पति ने शाप दिया। हे गर्भ! जो तुमने रेतोनिरोध किया। अतः तुम दीर्घ तम को प्राप्त होकर अन्धे हो जाओ। इस प्रकार शाप प्राप्त कर ममता में दीर्घतमा उत्पन्न हुआ। उसने उत्पन्न होकर अन्धत्व की व्यथा से व्यग्र होकर अग्निदेव की स्तुति की। अग्नि ने स्तुति से प्रसन्न होकर उसके अन्धत्व को दूर किया। यही ऐतिहासिक कथा संक्षिप्त रूप से सायण आदि

---

१. ऋ. १.५८.४ सायण-भाष्य

२. ये पायवो मामतेयं ते अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन्।
रक्ष तान्सुकृतो विश्ववेदा दिप्सन्त इद्रिपवो नाह देभुः।।
ऋ. १.१४७.३ सायण-भाष्य।

भाष्यों में अन्यत्र है[१]। पर यह कथा वेद में कहीं भी उपलब्ध नहीं होती। यह कथा बृहद्देवता में है। अतः विश्वासयोग्य नहीं है। यह दीर्घतमा ऋषि गोतम गोत्र में एक प्रवर है[२]।

विशेष : इस ऋषि के द्वारा दृष्ट मन्त्रों के द्वारा यह रहस्य प्रकट होता है कि इस विश्व में सर्वप्रथम संवत्सरचक्र का परिज्ञान, वर्ष विज्ञान, ऋतुविज्ञान, मासविज्ञान, कितने रात्रि दिन का वर्ष होता है – इस सबका ज्ञान इस ऋषि को ही प्राप्त हुआ।

३. **कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः** उशिज का पुत्र होने से औशिज उसका नाम हुआ। दीर्घतमस् का पुत्र होने से दैर्घतमस नाम पड़ा। इस विषय में एक आख्यायिका सायण-भाष्य में दी गई है[३]।

इस आख्यायिका का मूल वेद में नहीं है। वह केवल बृहद्देवता में उपलब्ध होती है। अतः विश्वासयोग्य नहीं है। तथापि यहाँ लिखा जा रहा है। अङ्गराज कभी अपनी स्त्रियों के साथ गङ्गा में जलक्रीडा कर रहा था। उस समय दीर्घतमा नामक ऋषि को अपनी स्त्री, पुत्र, भृत्य आदि के द्वारा अत्यन्त दुर्बल होने के कारण कुछ भी नहीं कर सकते, इस द्वेष बुद्धि से कहीं मध्यगङ्गा में फेंक दिया गया। वह ऋषि किसी नाव से अङ्गराज के क्रीडास्थल पर आ पहुँचे। उस राजा ने ऋषि को सर्वज्ञ जानकर नौका से उतरकर कहा – हे भगवन्! मुझे पुत्र नहीं है। यह महिषी है। इसमें किसी पुत्र को उत्पन्न कीजिए। ऋषि ने स्वीकार किया। महिषी ने तो राजा को स्वीकृति देकर मन में यह वृद्धतर और निन्दित मेरे योग्य नहीं है यह सोचकर अपनी उशिक् नामक दासी को वृद्ध के पास भेज दिया। उस सर्वज्ञ ऋषि द्वारा मन्त्र से पवित्र जल द्वारा वह अम्युक्षित पवित्रीकृत सिक्त होती हुई ऋषि पत्नी हो गई। उससे कक्षीवान् नामक ऋषि उत्पन्न हुए। वही राजा के पुत्र हुए। उन्होंने अनेक प्रकार के राजसूय आदि यज्ञ सम्पन्न किये।

---

१. ऋ. ४.४.१३. ये पायव इति मन्त्रः।

२. बौ. श्रौ. प्रवर १३.२

३. ऋ. सं. १.५१.१३

यज्ञों द्वारा सन्तुष्ट इन्द्र ने उस राजा को वृचया नामक तरुणी स्त्री प्रदान की। पर इस कथा के अनुसार कक्षीवान् राजा प्रतीत होते हैं।

वह कक्षीवान् ऋषि तो अन्य है जो मन्त्रद्रष्टा है। वह उशिज ऋषि का पुत्र है। वहाँ कोई उशिङ्या उशिज नाम की दासी नही है। वहाँ उशिज नामक ऋषि श्रौत प्रवर में पढ़ा गया है[१]। उसका कक्षीवान् नाम का प्रख्यात पुत्र हुआ। अतः दैर्घतमस कक्षीवान् राजा अन्य है। मन्त्रद्रष्टा ऋषि कक्षीवान् औशिज अन्य है। वामदेव इस कक्षीवान् ऋषि के प्रति कहते हैं – मैं ही मनु हुआ, मैं ही सूर्य हुआ, मै ही कक्षीवान् विप्र ऋषि हूँ[२]। मुझे ही कवि उशना देंखे। इससे यह प्रमाणित होता है कि कक्षीवान् प्रख्यात ऋषि था।

विशेष – वामदेव ऋग्वेद के चतुर्थमण्डल के ३ सूक्त छोड़कर समस्त मण्डल के द्रष्टा ऋषि हैं। वामदेव को गर्भ में रहते ही ज्ञान प्राप्त हो गया था। वामदेव ने अपने को सूर्य, मनु, कक्षीवान्, उशना जैसे व्यक्तियों से तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित कर एकरूपता प्रदान कर तद्रूप माना। यह उनके आत्मज्ञान की विशेषता है।

इससे यह प्रमाणित होता है कि वामदेव से भी बढ़कर कक्षीवान् ऋषि की प्रसिद्धि थी। इस कक्षीवान् ऋषि की मति को सोम ने बढ़ाया था[३] तथा अश्विनों ने इन्हें प्रचुर बुद्धि प्रदान की[४]। कक्षीवान् नामक ऋषि ने पहले अन्धकार अर्थात् अज्ञानता में रहने के कारण ज्ञान-प्राप्ति के लिए अश्विनों की स्तुति की। इनका "पज्रिय" विशेषण है[५]।

---

१. हिरण्यकेशि श्रौतसूत्र २१.३.९.

२. अहं मनुरभवं सूर्यश्चाहं कक्षीवानृँषिरस्मि विप्रः।
अहं कुत्समार्जुनेयं न्यृब्जेऽहं कविरुशना पश्यता मा। ऋ. ४.२६.१

३. ऋ. १०.२५.१०

४. ऋ. १.११६.७, १०.१४३.१

५. ऋ. १.११६.७

अङ्गिरस लोगों का पज्र नाम है। ऐसा वैदिक कथन है कि पज्र अङ्गिरस होते हैं। सोम ने शतवर्षीय कक्षीवान् के लिए गौ प्रेरित किया[१] - हे ब्रह्मणस्पते! सोम का अभिषव करने वाले सोमलता का रस निकाल कर इन्द्र आदि देवताओं को समर्पित करने वाले को ऐसा प्रकाशित कीजिए। मानो कक्षीवान् देवताओं में प्रसिद्ध था[२]। इस कथन से कक्षीवान् की विशेषता प्रकट होती है। दो औशिज प्रतीत होते हैं। दीर्घश्रवा औशिज और कक्षीवान् औशिज[३]। मन्त्रद्रष्टा कक्षीवान् अपना परिचय देते हुए स्तुति करते हैं कि मैं औशिज आप का आह्वान करता हूँ - इस प्रकार बुलाता है[४]। प्रथम मण्डल के ११६ वें सूक्त से आरम्भ कर १२५ सूक्त तक के समस्त मन्त्रों का तथा १२६ वें सूक्त मे ५ मन्त्रों का एवम् नवम मण्डल के ७४ वें सूक्त के मन्त्रों का या जो कुल १६० मन्त्रों का द्रष्टा है। जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण से विदित होता है कि इनके अनेक पुत्र थे[५]। ये श्रोत्रिय थे। काक्षीवत साम से स्तुति करते हुए लोगों ने बहुत पुत्र प्राप्त किये[६]। पाणिनि-सूत्र में इनका नाम उपलब्ध होता है[७]। हिरण्यकेशि श्रौतसूत्र के गोतम गोत्र प्रवर प्रकरण में इनका नाम आया है[८]। अत: ये गोतम हैं। इनके विषय में कथा है – कक्षीवान् गुरु से विद्याध्ययन कर अपने घर आते हुए थक जाने पर वन में ही सो गये[९]। भावयव्य के पुत्र स्वनय ने क्रीडा के लिए वन में जाते हुए उस तेजस्वी कक्षीवान् ऋषिपुत्र को देखा। देवपुत्र के समान उसे देखकर उसे कन्या देने की मति की, विचार

१. ऋ. ९.७४.८
२. ऋ. १.१८.१
३. ऋ. १.११२.११
४. ऋ. १.११२.४, १.११२.५, १.११९.९
५. जै. उ. ब्रा. २.२.४.११
६. तां. ब्रा. १४.११.१७, २५.१६.३
७. पा. अष्टाध्यायी ८.२.१२
८. हि. श्रौ. सू. २१.३.९, १०१
९. ऋ. १.१२१.१२२

किया। गोत्र आदि पूछने पर उसने स्वयं को आङ्गिरस बताया। तत्पश्चात् स्वनय ने उसे दशकन्या प्रदान की। उन कन्याओं के साथ रथ, वृषभ (बैल), घोड़े तथा निष्क आदि स्वर्णमुद्रायें प्रदान कीं। बृहद्देवता नामक ग्रन्थ को छोड़कर वेद-वाङ्मय में कहीं भी यह दीर्घतमा का पुत्र नहीं है, सर्वत्र यह उशिज-पुत्र है। स्वनय द्वारा दिए गये धन सौ निष्क, सौ घोड़े, साठ हजार गायों का समूह सब कुछ अपने पिता के लिए कक्षीवान् ने दिया[१]। अङ्गिरसों के पुत्र ने जिस संवनन (संपत्ति आदि) की प्राप्ति की, विश्वेदेव हमें उस संवनन संभजन या संपत्ति से युक्त करें - ऐसा खिल सूक्त के मन्त्रों से प्रमाणित होता है[२]।

समीक्षा

दीर्घतमा - ममता पुत्र - औचथ्य की आयु दशयुग पर्यन्त थी।

दीर्घतमा मामतेयो जुजुर्वान् दशमे युगे।

इन्द्र ने एकाह यज्ञ का प्रवचन अङ्गिरा को दिया और अङ्गिरा ने दीर्घतमा को। २४२ मन्त्रों के द्रष्टा हैं। इनका आख्यान इस प्रकार है - दासों ने इन्हें अग्नि में समाप्त करने हेतु फेंका। अश्विनों की स्तुति से बच गये। पुनः जल में फेका। पुनः स्तुति से बच गए। छाती और शिर छील दिया। पुनः अश्विनों की स्तुति से उनका जीवन बचा। अग्नि की स्तुति से इन्होंने चक्षु प्राप्त किया। इतिहास इस प्रकार है - ज्येष्ठ पत्नी ममता के साथ बृहस्पति की इच्छा-पूर्ति न होने पर गर्भ को मिले शाप से। दीर्घतमा का जन्मान्ध होना। अग्नि की स्तुति करने पर अन्धत्व निवारण। वे चक्षुष्मान् हुए। कक्षीवान् दो हैं। दैर्घतमस कक्षीवान् तथा औशिज कक्षीवान्। अविश्वसनीय कथा भी है। पुत्रहीन अङ्गराज ने दीर्घतमा को सर्वज्ञ जानकर स्वभार्या में पुत्रोत्पत्ति की कामना की। भार्या ने स्वयं न जाकर दासी उशिज् को भेजा। दासी ऋषि द्वारा

---

१. ऋ. १.१२६.२-३

२. ऋग्वेद खिल. ३.१५.३२, ५.१.३

अभिषिक्त हो ऋषिभार्या हो गई। उससे पुत्र होने पर वह दैर्घतमस अङ्गराज बलि का पुत्र माना गया। वह कक्षीवान् राजा था।

जो कक्षीवान् ऋषि है वह उशिज का पुत्र है "कक्षीवन्तं य औशिजः।" कक्षीवान् अधिक प्रसिद्ध ऋषि हुआ। वामदेव ने गर्भ में ही ज्ञान प्राप्त कर सर्वात्म्य रूप होते हुए कहा मैं ही मनु, सूर्य हुआ। मैं ही कक्षीवान् ऋषि हुआ। मैं ही उशना कवि हुआ। इस प्रकार के कथन से यह प्रतीत होता है कि कक्षीवान् और उशना सदृश प्रसिद्ध ऋषियों के समान वामदेव स्वयं को प्रकट कर रहा है। कक्षीवान् शत वर्षीय, आयु का था। सोम उसे गौ प्रदान करता है। वह देवताओं में प्रसिद्ध था। कक्षीवान् १६० मन्त्रों का द्रष्टा है। इनका साम भी था, जिससे स्तुति करने पर बहुपुत्र की प्राप्ति होती है। कक्षीवान् के अनेक पुत्र थे। कक्षीवान् गुरु से विद्या प्राप्त कर घर जाता हुआ वन में सो गया। भावयव्य-पुत्र स्वनय ने देवपुत्र समान उसे देखकर गोत्रादि पूछा। कक्षीवान् ने अङ्गिरस गोत्र बताया। स्वनय ने उसे दश कन्याएँ तथा अतुल धन दिया। कक्षीवान् ने सब धन अपने पिता को दिया।

वेद-वेदाङ्गों में गोतमों की वाणी

गोतम पिता रहूगण से तथा पितामह अङ्गिरा से कक्षीवान् औशिज पर्यनत चतुर्दश गोतम ऋषियों द्वारा दृष्ट मन्त्र और उनका परिचय पूर्वपरिच्छेदों में प्रदर्शित किया गया है। तत्पश्चात् उत्पन्न गोतमों का प्रवक्तृत्व निरूपित किया जा रहा है - कक्षीवान् के कई पुरुषों के पश्चात् वाजश्रवा उत्पन्न हुआ।

१. **वाजश्रवा** - वाज का अर्थ अन्न होता है। अन्नदान के निमित्त यश प्रसिद्ध हो जिस महर्षि का उसे वाश्रजवा कहते हैं। यह सायण का कथन है[१]। वाजश्रवस् यह पद ऋग्वेद में दो बार आया है। एक स्थान पर अग्नि का विशेषण है।[२] सायण के अनुसार दूसरे स्थान पर अन्न का विशेषण है।[३] यह वाश्रजवा गोतम था[४] क्योंकि इसके पुत्र गोतम थे। शतपथ ब्राह्मण से जाना जाता है कि इनके गुरु का नाम जिह्वावान् बाध्योग था जिससे इन्होंने इस ब्राह्मण ग्रन्थ का अध्ययन किया था।[५] इसका नाम अग्निवेश्य[६], बौधायन[७]

---

१. तैत्तिरीय ब्राह्मण १.३.१०.३

२. ऋक् संहिता ३.२.५

३. ऋ.सं. ६.३५.४

४. तै.ब्रा. ३.११.८

५. श.ब्रा. १४.९.४-३३, बृ.उ. ६.४.३२ माध्य. ६.५.३ काण्व।

६. आ.वे.गृ. १२.२.१९

७. बौ.गृ.३.९.५

भारद्वाज[१] तथा हिरण्यकेशि गृह्यसूत्रों में आया है।[२] इनमें इनके अति उच्च मत समाविष्ट हैं।

२. **कुश्रिर्वाजश्रवस** - यह कुश्रि वाजश्रवा का पुत्र था।[३] इस कारण पैतृक नाम कुश्रि वाजश्रवस था। यह कुश्रि वाजश्रवस का शिष्य भी था[४]। सुश्रवा कौष्य इस कुश्रि से चित्यग्नि के पूर्व आदि मुख चयन के कारणों को पूछता है। कुश्रि उनका उत्तर देता है[५]। इस प्रकार ये यज्ञीय अग्नि के प्रामाणिक विद्वान् स्वीकृत किये गये हैं। वाजश्रवस ऋषियों ने सर्वप्रथम ''सोमाय पितृपीताय'' इस मन्त्र के व्याख्यानरूप ब्राह्मण की जानकारी प्राप्त की[६]। इस वेदन के कारण प्रत्येक उन महर्षि ने दो स्त्रियों की प्राप्ति की। ये वाजश्रवस गोतम कहे गये हैं[७]। अतः यह कुश्रि वाजश्रवस भी गोतम ही है। वाजश्रवस बौधायन श्रौतप्रवर में भी पढ़े गये हैं[८]। शतपथ[९] ब्राह्मण से यह स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है कि यह कुश्रि यज्ञवचस् राजस्तम्बायन के शिष्य कुश्रि से भिन्न है अथवा अभिन्न है। कुश्रि भी बौधायन श्रौत प्रवर में पठित है[१०]। इनका नाम बहुत से ग्रन्थों में उपलब्ध होता है[११]।

---

१. भार.गृ. ३.१०.४
२. हि.गृ. २.१९.६
३. श.ब्रा. १०.५.५.१
४. श.ब्रा. १४.९.४.३३, बृ.उ.६.४.३२ माध्य., ६.५.३, काण्व।
५. श.ब्रा, १०.५.५.१
६. तै.ब्रा. १.३.१.३
७. तै.ब्रा. ३.११.८
८. बौ. श्रौ. प्र. २१.२
९. श. ब्रा. १४.९.४.३३ तथा १०.६.५.९
१०. बौधायन श्रौत प्रवर ४३.३
११. पाणिनीय उणादि भोजवृत्ति २.१.२२८, तथा शुक्ल यजुः सर्वानुक्रमणिका २.७७, कठोपनिषद् १.१.१

३. **उपवेश** - उप उपसर्ग से विश् धातु से भाव में घञ् प्रत्यय होने पर उपवेश शब्द की सिद्धि होती है। संहिताओं[१] ब्राह्मण[२] और श्रौतसूत्रों में[३] इनके नाम का प्रयोग है। पर उन मन्त्रों में प्रयुक्त नाम इनका प्रतीत नहीं होता। मेरे यज्ञ में प्रवेश कर बैठता है, वहीं रहता है, किसी दूसरे यज्ञ में नहीं जाता – इस प्रकार उपवेश पद का अर्थ सायण करते हैं[४]।

पाणिनीय गणपाठ में इनका नाम पठित है[५]। सायण ने तो औपवेशि को इन्हीं का पुत्र माना है[६]। जब अरुण औपवेशि गोतम कहे गये हैं, तब उनके पिता यह उपवेश भी गोतम ही है।

४. **उपवेशि** - उपविश् से इन् प्रत्यय होने पर पद-सिद्धि होती है अर्थात् उपवेशि शब्द बनता है। शुक्ल यजुर्वेद सम्प्रदाय के ये प्रवर्तक हैं। इनका नाम शतपथ ब्राह्मण[७] में तथा दोनों शाखाओं के काण्व[८] और माध्यन्दिन[९] के बृहदारण्यक उपनिषदों में उपलब्ध होता है।

वहाँ वंशसूची के अनुसार इनके गुरु का नाम कुश्रि था जिससे शुक्लयजुर्वेद का अध्ययन किया था। अनुमान किया जाता है कि उपवेश ही उपवेशि है। ये दोनों भिन्न महर्षि नहीं हैं। वेद में इनका नाम उपवेशि है। पाणिनीय गणपाठ में उपवेश है। मन्त्रों में उपवेश शब्द है। पर वहाँ किसी महर्षि का नाम प्रतीत नहीं होता। औपवेशि

---

१. तै.सं. ३.१.७.१.३२, ७.५.५.१ काठ.स. ३४.४, ३५.१० कठकपि. ४८.१३।

२. तां.ब्रा. ९.४.६

३. बौ.श्रौ. १४.४, २३, १७.१ शां.श्रौ. १३.५.४, वारा.श्रौ. १.२.२.५ कात्या. श्रौ. २५.१४.१६ आप. श्रौ.१४.१९.१, २६.२

४. तां.ब्रा. ९.४.६ भाष्य-सायण।

५. पा.ग. ४.४.१२

६. तै.ब्रा. २.१.५.११

७. श.ब्रा. १४.९४.३३

८. बृ.उ. काण्व ६.५.३

९. बृ.उ. माध्य. ६.४.३२

पद की व्याख्या में अरुण को उपवेशपुत्र मानते हैं। कीथ और मैकडानल भी उपवेश-वंशज मानते हैं।[१]

उपवेश शब्द तथा उपवेशि शब्द से अपत्य अर्थ में औपवेशि शब्द ही सिद्ध होता है। जब आरुण औपवेशि गोतम है तो उसका पिता यह उपवेशि भी गौतम है।

५. **अरुण औपवेशि गोतम** - अरुण शब्द तैत्तिरीय, काठक मैत्रायणीय संहिताओं में ऋषिवाचक आया है। अन्य अवशिष्ट संहिताओं में विशेषण रूप से आया है, जो इसका नाम प्रतीत नहीं होता[२]। यज्ञों की विशिष्ट विधियों का प्रवक्ता तैत्तिरीय संहिता में दो स्थलों पर, काठक संहिता में भी दो स्थलों पर, मैत्रीयणीय संहिता में ६ स्थलों पर यह निर्दिष्ट हुआ है[३]। ऋ गतौ धातु से "अर्तेश्च" इस उणादि सूत्र से उनन् प्रत्यय के बाद गुण होने पर अरुण बना। इस ऋषि का तै.सं. के सोम उन्मान नामक प्रकरण में[४] उपांशु ग्रह कथन नामक प्रकरण में भी विशिष्ट यज्ञविधियों के प्रसङ्ग में मत निरूपित किया गया है[५]।

काठक संहिता के धिष्ण्य प्रकरण में[६] याजमान प्रकरण में भी इनका समस्त मतों से ऊपर व्यक्त किया गया

---

१. वैदिक इन्डेक्स, औपवेशि पद

२. शाकल संहिता २६ कौथुम सं. ५ जै.सं. १ काण्व सं. ७ माध्य.सं. ६ तै.सं. १२ काठ.सं. १३ मै.सं. १९ कठक.सं. ४ शौ.सं. १० पैप्पलाद सं. ७ सप्त कृत्वः समायातः।

३. मै.सं. १.४.१०, ३.६.४, ६, ३.७.४, ३.८.६, ३.१०.५

४. तै.सं. ६.१.९.२ अरुणो ह स्माहौपवेशिः सोमक्रयण एवाहं तृतीयसवनमवरुन्ध इति।

५. तै.सं. ६.४.५.१, अरुणो ह स्माहौपवेशिः प्रातः सवन एवाहं यज्ञं संस्थापयामि तेन ततः संस्थितेन चरामि।

६. अथ ह स्माहारुण औपवेशिः किमु स यजेत य उपांशौ यज्ञं संस्थाप्यं न विद्यादिति। काठ.सं. २६.१०

है[१]। इन संहिताओं में "अरुण औपवेशि" इस विशेषण से इसके मत हैं। इससे ज्ञात होता है कि यह उपवेशि का पुत्र है। इनके गुरु भी उपवेशि ही थे। इस प्रसिद्ध गोतमवंशज अरुण का पैतृक नाम औपवेशि गोतम है। उपर्युक्त तीन संहिताओं में १० बार इनका मत ग्रहण होने से ज्ञात होता है कि यह यज्ञ-प्रक्रिया में उत्कृष्ट विधानों का वेत्ता था।

तैत्तिरीय ब्राह्मण से विदित होता है कि यह सायं प्रातः कालिक अग्निहोत्र को शत्रुओं के लिये वज्र के रूप में प्रकल्पित करते हैं[२]। यहाँ इनका विशिष्ट मत स्वीकृत किया गया है। अन्यत्र भी इनके प्रचुर मत दिये गये हैं[३]।

शतपथ ब्राह्मण से ज्ञात होता है कि पाँच आचार्य सत्ययज्ञ पौलुषि, महाशाल जाबाल, बुडिल आश्वतराश्वि, इन्द्रद्युम्न भाल्लवेय, जन शार्कराक्ष्य इनके पास वैश्वानरविद्या-प्राप्ति के लिये पहुँचे थे।[४] इससे प्रमाणित होता है कि इन पाँच आचार्यों से श्रेष्ठ था। ये सभी वैश्वानर विद्याप्राप्ति के लिए मिलकर अश्वपति कैकेय के पास गये। उन सभी से अश्वपति ने कहा - आप सभी अनूचान हैं। अनूचान पुत्र है क्या, कि आप सभी यहाँ उपस्थित हुए हैं। सभी ने कहा - आप वैश्वानर विद्या जानते हैं। इस समय उस विद्या को हमें बताइये। उनके प्रति उन्होने वैश्वानर विद्या का उपदेश किया। इससे यह विदित होता है कि अरुण और उसके पिता दोनों अनूचान थे। अश्वपति ने इन्हें गोतम नाम से सम्बोधित किया। उन सभी ने उससे वैश्वानर विद्या

---

१. अथ ह स्माहारुण औपवेशिरहुतासु वा अहमाहुतिषु देवता हव्यं गमयामि संस्थितेन यज्ञेन संस्थां गच्छानीति काठ.सं. ३२.७

२. अरुणो ह स्माहौपवेशिः अग्निहोत्र एवाहं सायं प्रातर्वज्रं भ्रातृव्येभ्यः प्रहरामि तस्मात् पापीयांसो भ्रातृव्या इति। तै.ब्रा. २.१.५.११

३. तै.ब्रा. ३.१२.५.३, २.७.१.२, ३.१०.१.४, ९.८, १०.३, १२.५.३, तै. आ. १. १०.६, २३.५, ६,७ २६.१

४. श. ब्रा. १०.६, १.१४

प्राप्त की। यह अश्वपति का समकालिक था[१]। शतपथ ब्राह्मण में और अन्यत्र बताया गया है कि जब अरुण औपवेशि वृद्ध हुए तब ज्ञाति के लोगों ने कहा – हे अरुण! तुम अग्नियों का आधान करो। उस समय अरुण ने उन लोगों से कहा – वे सभी मुझ से ऐसा न कहें। क्योंकि वाणी पर नियन्त्रण करने वाला वाचंयम मनुष्य ही कल्याण प्राप्त करता है।

आहिताग्नि असत्य भाषण न करे। अत: सत्य बोलना ही श्रेयस्कर है। इस प्रकार ये अरुण औपवेशि बहुत से यज्ञों के विषय में प्रवक्ता प्रमाणित होते हैं।

६. **आरुणिउद्दालक** – प्रसिद्ध उपवेशि अरुण अनूचान की सन्तान होने के कारण आरुणि कहे गये हैं। इनके गुरु और पिता अरुण ही थे।[२] आरुणि यशस्विन् भी इनका नाम प्रतिभासित होता है। जिसका जैमिनीय ब्राह्मण में सुब्रह्मण्या पढ़ाते हुए गुरु रूप से इनके नाम का उल्लेख है[३]। काठक संहिता में पशुबन्ध प्रकरण में इसको आरुणियों ने सर्वप्रथम जाना। ''आ वायो भूष शुचि पा उपा न'' इस मन्त्र[४] से यह ज्ञात होता है कि इसका या इन लोगों की यज्ञ के तत्वों की जानकारी प्रसिद्ध थी। वहीं आलोभी प्रकरण में आरुणि ने कहा – जो उन रात्रियों के स्तर्य (हिंसा) में निवास न करे, जब तक इन ऋचाओं का श्रवण न करे, जो इस विधि को जानता है वह स्तर्य (हिंसा) रात्रि में नहीं बसता। यह इसका मत कहा गया है।[५] इस प्रकार काठक संहिता में ५ बार इनके मत दिये गये हैं[६]। वहाँ इनका विशेष वक्तृत्व प्राप्त होता है।

---

१. श.ब्रा. २.२.२.२०

२. शं.ब्रा. १४.९.४.३३

३. जै.ब्रा. २.८०

४. काठ. सं १३.१२

५. काठ. सं. ७.९

६. काठ. सं. ७.६.३०, ७.६.३१, ७.८

आरुणि की जन्मभूमि – आरुणि कुरुपञ्चाल देश के निवासी थे[१]। प्रोति-कौशाम्बेय कौसुरुबिन्दि के गुरु थे[२]। यह अपने पिता अरुण के शिष्य थे[३] तथा पतञ्चल काप्य के भी शिष्य थे।[४] वाजसनेय याज्ञवल्क्य[५] के तथा कौषीतकि के गुरु थे।[६] शतपथ ब्राह्मण में १६ स्थलों पर आरुणि के नाम आये हैं। जहाँ इसके यज्ञ-विषय के सभी अन्य मतों को अतिक्रान्त करने वाले मत हैं तथा ब्रह्मसम्बन्धी प्रकथनों में इनका प्रखर पाण्डित्य परिलक्षित होता है, वे सभी मत क्रमशः दिये जा रहे हैं।

१. दर्शपूर्णमास यज्ञ के विषय में शकट (यज्ञ में हवि ढोने वाला छकड़ा) के धुर (जुआ, जुअट्ठा) को स्पर्श करते समय आरुणि का कथन है कि मैं पन्द्रह दिन में उत्पन्न शत्रुओं को नष्ट करता हूँ। इस स्पर्श से १५ दिन के पक्ष में १५ दिन में होने वाले दर्शपूर्णमास नाम के यज्ञ की अवधि में उठे शत्रुओं को विनष्ट करता हूँ अर्थात् प्रति अमावस्या किये जाने वाले यज्ञ से उस अवधि में उत्थित शत्रुओं का धुरस्पर्श से विनाश करता हूँ[७]।

२. अग्निहोत्र – प्रकरण में ब्रह्मवर्चस् की कामना करने वाले आरुणि के लिये तक्षा ने अनुवचन किया। 'अग्निर्वर्च' इस मन्त्र से अग्निहोत्र का हवन करते हुए वेद के अध्ययन से उत्पन्न तेज से युक्त ब्रह्मवर्चस्वी होता है। इससे प्रकट होता है कि आरुणि ब्रह्मवर्चस् की

---

१. श. ब्रा. ११.४.१.२

२. प्रोतिर्ह कौशाम्बेयः कौसुरुबिन्दिरुद्दालक आरुणौ ब्रह्मचर्यमुवास तं हाचार्यः पप्रच्छ कुमार कति ते पिता संवत्सरस्याहान्यमन्यतेति। श.ब्रा. १२.२.२.१३।

३. उद्दालकोऽरुणात् श. ब्रा. १४.९.४.३३ वृ. उ. ६.४.३३

४. वृ. उ. ३.७.१.६

५. वृ. उ. ६.३.१५, ४.३३

६. शां. आर. १५

७. तद्ध स्मैतदारुणिराह। अर्द्धमासशो वा अहं सपत्नाधूर्वामीत्येतद्ध स्म स तदभ्याह। श. ब्रा. १.१.२.११

कामना करने वाला था तथा अग्निहोत्र यज्ञ के बारे में उसके हृदय में जिज्ञासा थी[१]।

३. पश्चात् जीवल चैलकि ने आरुणि के मत का निर्देश किया है कि 'सूर्यो ज्योतिः' मन्त्र से होम करने से केवल गर्भ ठहरता है, प्रजनन नहीं होता[२]।

४. सोमयाग में भी इनका विशिष्ट मत है[३]।

५. सोम के प्रायश्चित्त प्रकरण में भी आरुणि मत की बहुधा प्रस्तुति की गई है[४]।

६. चरक सौत्रामणी यज्ञ-निरूपण में आरुणि का मत दिया गया है[५]।

७. दर्शपूर्णमास यज्ञ के अङ्ग-निरूपण में भी इनका मत दिया गया है[६]।

८. आरुणि भारत में अतिप्रसिद्ध विद्वान् था। उस समय उसके समान कोई प्रतिष्ठित विद्वान् नहीं था। एक यज्ञ में उदीच्य देश (कश्मीर) में

---

१. श.ब्रा. २.३.१.३१

२. श.ब्रा. २.३.१.३४

३. श.ब्रा. ३.३.४.१९

४. तद्ध स्मैतदारुणिराह। किं स यजेत यो यज्ञस्य वृद्ध्या पापीयान्मन्येत यज्ञस्य वा अहं वृद्ध्या श्रेयान्भवामीति इत्येतद्ध स्म स तदभ्याह यदेता आशिष उपगच्छति। श.ब्रा. ४.५.७.९।

५. इस उदवसानीया से यज्ञ करे, इससे आरुणि ने भद्रसेन अजातशत्रु के द्वारा अभिचार (यज्ञ) कराया था। याज्ञवल्क्य का भी मत है। इसी के द्वारा इन्द्र के आस्थान को छिन्न कर दिया था (श.ब्रा. ५.५.५.१४)। भद्रसेन अजातशत्रव के काल-निर्धारण से आरुणि और याज्ञवल्क्य का काल निश्चित हो सकता है।

६. आरुणि ने कहा – अर्धमास या १५ दिन में मैं उस आदित्य के साथ समान लोकवाला हो जाता हूँ और दर्शपूणमास की संपत्ति को जानता हूँ।

वह ब्रह्मा के रूप में चुना गया[१]। श्रेष्ठ विद्वान् के लिये एक निष्क (स्वर्ण) निश्चित था। भारत में यह परम्परा पूर्व से ही चलती थी। आरुणि की विद्वत्ता समझकर उदीच्य ब्राह्मण भय से डरे हुए थे। उन उदीच्य ब्राह्मणों ने आरुणि के प्रति ईर्ष्या करते हुए आपस में कहा - यह ब्रह्मा आरुणि कुरुपञ्चाल देश का निवासी है। यदि निष्क का आधा भाग हम लोगों को न दे तो ब्रह्मोद्य में या ब्रह्म संबंधी शास्त्रार्थ में इनकी पराजय करा दी जाये। उदीच्य ब्राह्मणों ने स्वैदायन नामक एक विद्वान् को शास्त्रार्थ करने के लिये तैयार किया। उन लोगों ने स्वैदायन से कहा - उद्दालक वीर के साथ ब्रह्मोद्य (शास्त्रार्थ) करना है जहाँ हम लोगों की ही विजय हो। स्वैदायन ने उन उदीच्य ब्राह्मणों से कहा, आप लोग यहीं रुक जायँ, मैं वहाँ जाकर जान लूँ।

उद्दालक के प्रति जाकर कहा। तब स्वैदायन ने पूछना प्रारम्भ किया। उद्दालक ने निष्क स्वैदायन को देकर कहा – स्वैदायन! तुम अनूचान हो, अनुवचन करने में समर्थ हो। सभी लोग सुवर्ण सुवर्णविद् को देते हैं अर्थात् तुम वेदविद् हो। तुम इस निष्क के अधिकारी हो। स्वैदायन उस निष्क को वहीं उद्दालक के पास रखकर वहाँ से चल पड़ा। स्वैदायन के आ जाने पर ब्राह्मणों ने पूछा– गौतम का पुत्र कैसा है। स्वैदायन ने कहा - जैसे ब्रह्मा ब्रह्मपुत्र होता है वैसे ही वह हैं। सिर गिर ज़ायेगा जो इनके साथ विवाद करेगा। वे ब्राह्मण उद्दालकको विशेषता या विशेष वैदुष्य सुनकर अपने-अपने स्थान पर चले गये। इस आख्यायिका से यह प्रकट होता है कि उद्दालक स्वयं विद्वान् होते हुए अन्य विद्वान् के लिये आदर देता है। उस समय अपना अस्तित्व छोड़कर आने वाले विद्वान् की स्तुति करता है। इस उदाहरण से उद्दालक की नम्रता व्यक्त होती है। इस आख्यायिका का यह आशय है कि आरुणि न केवल कुरुपञ्चाल देश में तथा उदीच्य देश कश्मीर में

---

१. श.ब्रा. ११.४.१.१-९

अद्वितीय विद्वान् थे अपितु पूर्ण भारत में उत्कृष्ट विद्वान् थे। गोपथ ब्राह्मण में भी ऐसी ही आख्यायिका है[१]।

९. शौचेय प्राचीन योग्य नामक आचार्य उद्दालक आरुणि के पास गये। मैं अग्निहोत्र जानना चाहता हूँ – ऐसा प्रश्न करने पर आरुणि गोतम ने समस्त प्रश्नों का उत्तर दिया[२]।

१०. इस आरुणि ने प्रोति कौशाम्बेय कौसुरुविन्दि के गुरु होते हुए कुमार से पूछा – तुम्हारे पिता संवत्सर के कितने दिन मानते हैं[३]।

११.-१२. अग्निहोत्र प्रायश्चित्त में इनके दो मत अन्तिम रूप से निरूपित किये गये हैं[४]।

१३.-१४. उद्दालक ने याज्ञवल्क्य से कितने ही प्रश्न पूछे। याज्ञवल्क्य ने उनका उत्तर दिया[५]।

१५. उद्दालक ने अपने शिष्य याज्ञवल्क्य को समस्त विद्या और ज्ञान का उपदेश दिया और कहा जो कोई इस को शुष्क स्थाणु (वृक्ष) पर सींच दे तो शाखायें उत्पन्न हो जायें, पत्ते उग आयें[६]।

१६. उद्दालक द्वारा पुत्रमन्थ नामक कर्म निरूपित किया गया है[७]।

१७. अरुण से आरुणि ने विद्या का अध्ययन किया[८]।

---

१. गोपथ ब्राह्मण १.३.६
२. श.ब्रा. ११.५.३१, १३
३. श.ब्रा. १२.२.२.१३
४. श.ब्रा. १२.४.१.११, ११
५. श.ब्रा. १४.६.७.१, ३१
६. श.ब्रा. १४.९.३.१५
७. श.ब्रा. १४.९.४.४
८. श.ब्रा. १४.९.४.३३

अर्यल गृहपति के होता आरुणि आदि थे[१]। आरुणि का मत है कि जिस क्षत्रिय को इन व्याहृतियों से अभिषिक्त कर देते हैं, वह क्षत्रिय संपूर्ण आयु को प्राप्त करने में समर्थ होता है। अपनी विजय से समस्त शत्रुओं को आक्रान्त कर सम्पूर्ण भोग प्राप्त करता है[२]।

छान्दोग्य उपनिषत् के अनुसार इस मधुविद्या (ज्ञान) को ब्रह्मा ने प्रजापति से कहा। प्रजापति ने मनु से, मनु ने प्रजाओं को और इसे ज्येष्ठ पुत्र उद्दालक आरुणि के लिये पिता ब्रह्मा ने कथन किया[३]। इससे ज्ञात होता है कि आरुणि ज्येष्ठ पुत्र था। इसके अन्य भाई भी थे। प्राचीनशाल औपमन्यव आदि पांच आचार्य आरुणि के पास वैश्वानर विद्याध्ययन के लिये गये[४]। इससे विद्वानों में आरुणि की श्रेष्ठता प्रमाणित होती है। अश्वपति कैकेय ने आरुणि गोतम से पुछा - तुम किस आत्मा की उपासना करते हो[५]। उत्तर मिला – भगवन् पृथिवी की ही। एक बार आरुणि अपने पुत्र श्वेतकेतु के प्रति आत्मज्ञान का उपदेश करता है[६]।

कठोपनिषत् में औद्दालकि आरुणि विशेषण है नचिकेता के पिता का[७]। पर यह आरुणि उसका पिता नहीं है क्योंकि इसका एक विशेषण है औद्दालकि। उद्दालक ही औद्दालकि है यह शंकर का मत चिन्त्य है, विचारणीय है। वस्तुतः उद्दालकपुत्र ही औद्दालकि होगा। जैसे नचिकेता।

---

१. ता.ब्रा. २३.१.५

२. ऐ.ब्रा. ८-७, पृ. ९१२

३. छा.उ. ३.११.४

४. छा.उ. ५.११.२

५. छा.उ. ५.१७.१

६. छा.उ. ६.८.१

७. कठो. १.१.११

चित्र गार्ग्यायणि ने यज्ञ करते हुए आरुणि का श्रेष्ठ आचार्य मानते हुए वरण किया[१]। इससे स्पष्ट होता है कि भारत में उस समय आरुणि के समान कोई विद्वान् नहीं था। आरुणि प्रजापति-लोक गये[२]। प्रजापति से कहा – भगवन् किस प्रकार से संपूर्ण कर्मों का परित्याग किया जाये। इस आरुणि के मत और नाम बहुत से ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं[३]। ऋग्वेद की एक औद्दालकि शाखा है। व्याकरण महाभाष्य में यही आरुणेय शाखा कही गई है। सामवेदीय गौतमी शाखा से भिन्न यह शाखा है[४]।

७. श्वेतकेतु औद्दालकि आरुणेय – यह श्वेतकेतु अरुणा का वंशज अथवा अरुण का पौत्र और आरुणि का पुत्र था। अतः आरुणेय कहा जाता है।

आरुणि उद्दालक का पुत्र होने से यह औद्दालकि भी कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण में इसके ८ मत हैं जिनके द्वारा इनकी यज्ञसंबंधी विधियों का पता लगता है। इनका प्रवक्तृत्व क्रमशः निरूपित किया जा रहा है।

१. इनका मत है कि वृत्र सोम है। उसका शरीर पर्वत है, पत्थर है। उससे औषधियाँ उत्पन्न होती हैं। औषधि रूप सोम को लाकर उसका अभिषव करते हैं अर्थात् उसका रस निकालते हैं[५]।

---

१. कौषीतकि ब्राह्मणेपनिषद् १.१
२. आरुण्युपनिषद् १
३. जै.उ.ब्रा. २.५.१ ऐ आ. २.४.१ महानारायणोपनिषद् २.७९, मुक्तिकोपनिषद् १.७.३१
४. भगवद्दत्त, वैदिक वाङ्मय का इतिहास पृ. २२९
५. देवो वै सोमो दिवि हि सोमो वृत्रो वै सोम आसीत्तस्यैतच्छरीरं यद्गिरयो यदश्मानः तदेषोऽशानानामौषधिर्जायते इति हस्माह श्वेतकेतुरौद्दालकिः श.ब्रा. ३.४.३.१३

२. यही मत अन्यत्र भी है[१]।

३. श्वेतकेतु आरुणेय यज्ञ कर रहा था। उसके पिता उद्दालक ने कहा – किन-किन ऋत्विजों का वरण कर रहे हो। मेरा होता वैश्वावसव्य है। पिता उस होता से पूछते हैं – चार महत् (महान्) को जानते हो। होता ने कहा – जानता हूं। इस रूप में श्वेतकेतु द्वारा होता के चयन की निपुणता और यजनशीलता परिलक्षित होती है[२]।

४. प्रयाजों के महत्त्व का वर्णन करता है[३]।

५. इसका मत हे कि त्रयीविद्या का जो शेष है वह मधु है। अतः मधु-प्राशन द्वारा तीनों वेदों का अध्ययन ही सम्पन्न करते हैं। इसलिए कामना या विशेष उद्देश्य के रूप में मधु का भक्षण किया जा सकता है। इससे ज्ञात होता है कि यह श्वेतकेतु मौलिक विचारों का प्रवर्तक है क्योंकि ब्रह्मचारियों के लिये मधुभक्षण वर्जित होने पर भी उसके भक्षण की अनुमति देता है[४]।

६.-७. जनक के द्वारा पूछने पर श्वेतकेतु आरुणेय अग्निहोत्र यज्ञ की प्रशस्तता का वर्णन करता है[५]।

८. यह चाहता है कि संवत्सर के लिये दीक्षा व्रत ग्रहण करूं। पिता उद्दालक श्वेतकेतु की उपेक्षा कर कहता है। तुम जानते हो संवत्सर की गाध प्रतिष्ठा को। मैं जानता हूँ – इस प्रकार उसका उत्तर देता है[६]। इस प्रमाण से श्वेतकेतु की यज्ञतत्त्व की विज्ञता परिलक्षित होती है।

९. श्वेतकेतु आरुणेय पाञ्चालों की परिषद् में गया। जैवलि प्रवाहण के पास जाकर अभिवादन किया। उनके द्वारा पूछे जाने पर कि तुम

---

१. श.ब्रा. ४.२.५.१५

२. श.ब्रा. १०.३.४.१

३. श.ब्रा. ११.२.७.१२

४. श.ब्रा. ११.५.४.१८

५. श.ब्रा. ११.६.२.१.२

६. श.ब्रा. १२.२.१.९

अपने पिता उद्दालक द्वारा शिष्ट शासित या अनुशासित हो। हूँ – ऐसा श्वेतकेतु ने कहा। जैवलि ने पांच प्रश्न किये।

इसने उसके एक प्रश्न का भी उत्तर नहीं दिया। तब पिता के पास आकर कहा – राजन्यबन्धु जैवलि ने प्रश्न किया। मैंने उत्तर नहीं दिया। अतः आप उन प्रश्नों का उत्तर दीजिये, उनका अनुवचन कीजिये। उसने प्रश्न के प्रतीकों का कथन किया। पिता ने कहा – जो मैं जानता हूँ वह सब मैंने तुमसे अनुवचन कर दिया है।

चलो हम दोनों चलें और उसके पास ब्रह्मचर्य के रूप में निवास करें। श्वेतकेतु ने कहा – आप ही जाइये। श्वेतकेतु के पिता ने राजन्यबन्धु के पास जाकर उनके लिये जल का अर्घ्य दिया। जैवलि के ऐसा कहने पर कि गौतम आप के लिये मैं वर देता हूँ। गौतम ने कहा, कुमार से अपने जो प्रश्न किये हैं, मैं उनका उत्तर चाहता हूँ। यही वर है। जैवलि ने उन प्रश्नों के उत्तर दिये। इस आख्यायिका के द्वारा यह प्रमाणित होता है कि किसी भी अवस्था में किसी भी व्यक्ति से ज्ञान प्राप्त कर ही लेना चाहिये।

१. छान्दोग्योपनिषद् (५.३.१) में जैसा श्वेतकेतु प्रवाहण जैवलि का प्रश्नोत्तर रूप संवाद हुआ, शतपथ ब्राह्मण में उद्दालक से जैवलि की उत्तर प्राप्ति कही गई। वैसी ही विद्याप्राप्ति इस उपनिषद् में कही गई।

२. श्वेतकेतु के प्रति पिता उद्दालक कहते हैं– हे श्वेतकेतो ब्रह्मचर्य–नियम से रहो। सौम्य हमारे कुल का गोतमगोत्रीय व्यक्ति बिना वेद पढ़े ब्रह्मबन्धु या ब्राह्मण नहीं रहता[१]। वह बारहवर्षीय श्वेतकेतु गुरु के पास गया। जब २४ वर्ष का हुआ, चारों वेदों का अध्ययन कर पिता के पास आ गया। इससे प्रकट है १२ वर्ष में चारों वेदों का अध्ययन किया। उस समय की शिक्षाप्रणाली अत्युत्तम थी।

---

१. छा. उ. ६.१.१

३. उद्दालक आरुणि ने श्वेतकेतु से कहा – सौम्य! स्वप्न के अन्त तक या शयन तक मेरा ज्ञान प्राप्त करो[१]। इस प्रश्न का उत्तर उन्होंने कहा।

४. उद्दालक ने श्वेतकेतु से कहा कि जगत् का मूल अणु भाव है। यह सत्य सब कुछ है। वह आत्मा है। वही तत्त्व तुम हो[२]।

५. पुनः आप ज्ञान प्रदान करें– इस प्रकार का निवेदन आरुणि से करता है[३]।

६. यह जो अणिमा है उस अणिमा से युक्त सब कुछ सत्य है। वही आत्मा है। वही तुम हो श्वेतकेतो[४]। पुनः आप मुझे ज्ञान प्रदान करें। सौम्य! ऐसा ही होगा। यहाँ दश स्थलों में श्वेतकेतो संबोधन द्वारा तत्त्व कथन किया गया है।

७. गार्ग्यायणि चित्र ने आरुणि का वरण किया है। आरुणि ने चित्र से कहा श्वेतकेतु को बुलाकर यज्ञ कराओ[५]। श्वेतकेतु चित्र के पास यज्ञ करानेवाले याजक के रूप में गया। बृहद्देवता में श्वेतकेतु नव कर्म से नाम की उत्पत्ति मानता है[६]। यह श्रुतर्षि था। आपस्तम्ब धर्मसूत्र में कहा गया है कि नियम के अतिक्रमण से ऋषि नहीं हो सकते। ऋषि उत्पन्न नहीं होते[७]। पर कुछ श्रुतर्षि होते हैं। कर्मफल के शेष रहने पर पुनर्जन्म में जैसे श्वेतकेतु श्रुतर्षि हुआ। इससे सुस्पष्ट है कि वाजश्रवस से लेकर कुश्रि, उपवेश, उपवेशि, अरुण, आरुणि आदि सभी (ऋषि) यज्ञप्रवर्तक आचार्य थे। पर आरुणिपुत्र श्वेतकेतु तो श्रुतर्षि था। वह कर्मफल शेष होने के कारण श्रुतर्षि हुआ। इस श्वेतकेतु ने अपनी

---

१. छा.उ. ६, ८.१

२. छा.उ. ६, ८.७

३. छा. उ. ६.९.४

४. छा. उ. ६.१०.१६

५. कौषीत.ब्रा.उ. १.१

६. बृ.दे. १.२४

७. आप.ध.सू. १.५.४.६

विशेषता के कारण ऋषित्व प्राप्त किया। अत्यधिक वेदाध्ययन के कारण श्वेतकेतु नियम करता है कि दारसङ्ग्रह करने पर भी प्रति वर्ष दो दो महीने समाहित होकर आचार्य कुल में निवास करे, पुनः श्रुति प्राप्त करने की इच्छा से[१]। इस योग से मैं अधिक से अधिक श्रुत का ज्ञान करूँ। पूर्व काल से ही करूँ। कौपीतकि ब्राह्मण में, कौषीतकियों के कल्प में, सदः में १७ ऋत्विज यज्ञों में होने वाली त्रुटियों के निरीक्षण संबंधी विवाद में श्वेतकेतु प्रामाणिक अधिकारी विद्वान् माना गया था[२]।

शांखायन श्रौतसूत्र में एक आख्यायिका है[३]। जल जातूकर्ण्य काशी, कोशल तथा विदेहों का पुरोहित हुआ। यह देखकर श्वेतकेतु ने अपने पिता आरुणि की आलोचना की कि उसके याज्ञिक ज्ञान से अन्य लोग लाभान्वित हो रहे हैं और यशस्वी हो रहे हैं। उनके पिता ने ऐसा कहने से उसे मना किया। उन्होंने कहा मैंने यज्ञ विद्या में प्रवीणता प्राप्त की है। अतः इस विषय में अन्य ब्राह्मणों के साथ विचार-विमर्श करना ही मेरे जीवन का लक्ष्य है। इससे ज्ञात होता है कि आरुणि अपने ज्ञान का प्रचार सर्वत्र करता था। उनकी यह नम्रता है जो स्वैदायन के समक्ष उन्होंने प्रदर्शित की।

८. नचिकेता – तैत्तिरीय ब्राह्मण के सुप्रसिद्ध आख्यान में इनका उल्लेख है। वहाँ उसे वाजश्रवाः का पुत्र तथा गोतम कहा गया है[४]। कठोपनिषत् में वह मुख्य रूप से वर्णित है[५]। वहां १८ नाम नचिकेता के आये हैं। यम और नचिकेता का संवाद पूर्णरूप से कठोपनिषद् में है। वहाँ इनके पिता का नाम वाजश्रवा, आरुणि और औद्दालकि है।

---

१. आप.ध.सू. १.१३.१९.२०

२. कौषी.ब्रा. २५.६

३. शां.औ. १६.२७.६

४. तै.ब्रा. ३.११.८

५. क.उ. १.२.१०, १.१.१८, ३.२, १६.२.३.१८, १.१.१४, १९, २१, २४, २५, २.३, ९, ११, १.२.४, १३, १.१.१, २९

एक के लिये ३ नाम उपयुक्त प्रतीत नहीं होते। ये तीनों भिन्न ऋषि हैं और इनका समय भिन्न-भिन्न है। कीथ और मैकडानल वैदिक कोष में इसकी ऐतिहासिकता के संबन्ध में सन्देह करते हैं[१]। जब यह वाजश्रवा का पुत्र है, तब आरुणि का नहीं होगा। यदि आरुणि का है, तो औद्दालकि का नहीं होगा। तै. ब्राह्मण और कठोपनिषद् के वाक्यों में असत्यता नहीं है। शङ्कर तो अपने भाष्य में उद्दालक को ही औद्दालकि मानते हैं[२]। सायण भी उसका ही अनुसरण करते हैं[३]। पर यह मत उचित प्रतीत नहीं होता। सभी ब्राह्मण ग्रन्थों में औद्दालकि पद से उद्दालकपुत्र ही ग्रहण किया जाता है[४]। व्याकरण की रीति से भी अपत्य (सन्तान) अर्थ में औद्दालकि होगा। बहुत से प्रमाण हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि ये शब्द समूहवाचक हैं– वाजश्रवस गोतम[५]। अरुण नामक-ऋषि[६] आरुणय,[७] उद्दालक ऋषिपुत्र[८] और औद्दालकि शब्द।

अतः वाजश्रवस से लेकर औद्दालकि तक सभी वाजश्रवस कहे गये हैं। आरुणि से लेकर औद्दालक तक सभी आरुणय कहे जाते हैं। श्वेतकेतु से कुसुरुविन्द तक सभी उद्दालकिपुत्रों को औद्दालकि कहना उपयुक्त है। लोक में भी ऐसा व्यवहार देखा जाता है। लव और कुश के पिता सूर्यवंश में उत्पन्न कहे जाते हैं। राम राघव या दाशरथि कहे जाते हैं। इसी प्रकार नचिकेता के पिता गोतमवंशीय वाजश्रवस, आरुणि, औद्दालकि इन तीनों नाम से व्यपदिष्ट (पुकारे जाते) हैं।

---

१. कीथ मैक्डा. वैदिक इन्डेक्स नचिकेता पद

२. कठो. शंकर भाष्य औद्दालकि पद १.११

३. तै.ब्रा. ३.११.८ सायण-भाष्य

४. श.ब्रा. ३.४.३.१३, ४.२.५.१५ तां.ब्रा. २२.१५.१०

५. तै.ब्रा. १.३.१०३

६. तै.आ. १.१०.६, १.२३.२,

७. जै.उ.ब्रा. २.५.१ काठ.सं. १३.१२ ऐ.आ. २.४.१

८. अथर्व परिशिष्ट ५२.१३.३

औद्दालकि पद से श्वेतकेतु और कुसुरुविन्द दो ही गृहीत होते हैं। इन दोनों में से कोई इसका पिता प्रतीत होता है। अथर्व-परिशिष्ट 'उद्दालकर्षिपुत्राः' (उद्दालक ऋषि के पुत्र) यह पद है, जिससे यह कहा जा सकता है कि उद्दालक के बहुत पुत्र थे। उनमें से एक नचिकेता का पिता होगा। क्योंकि उद्दालक पुत्र ही औद्दालकि कहा जाता है। अतः इस नचिकेता का पैतृक औद्दालकि नाम कठोपनिषद् में कहा गया है। संभवतः इसका पिता श्वेतकेतु औद्दालकि अथवा कुसुरुविन्द औद्दालकि अथवा उद्दालक पुत्र कोई अन्य औद्दालकि नाम उपयुक्त है। यह नचिकेता सर्वप्रथम ऋषिपुत्र मानव है जिसने प्रसन्न यमराज के द्वारा दिये जाने वाले अनेक प्रलोभनों से प्रभावित न होकर मृत्युविद्या का रहस्य यम से प्राप्त किया।

९. कुसुरुविन्द औद्दालकि – उद्दालक का अपत्य (सन्तान) औद्दालकि कुसुरुबिन्द नाम का। ताण्ड्य ब्राह्मण में कुसुरुबिन्द दशरात्र नामक यज्ञ का प्रकार इनके द्वारा ही देखा या खोजा गया। अर्थात् इस प्रकार के यज्ञप्रवर्तक ये ही थे[१]। इस यज्ञ के द्वारा कुसुरुबिन्द औद्दालकि ने यज्ञ कर भूमा को प्राप्त किया। जो यह यज्ञ करता है, वह भी भूमा को प्राप्त करता है[२] (तै.सं.)। कौसुरुबिन्द औद्दालकि ने कामना की कि मैं पशुमान् हो जाऊँ। उसने सप्तरात्र नामक यज्ञ का प्रवर्तन किया[३]। उपर्युक्त तीन प्रमाणों से यह ज्ञात होता है कि ये यज्ञविधियों तथा विविध यज्ञों के प्रवर्तक और ज्ञाता थे। ये यज्ञ के प्रामाणिक विद्वान् थे। वेबर महोदय का विचार है कि ये श्वेतकेतु के भ्राता प्रतीत होते हैं[४]। इनके नाम का पाठ अनेक रूपों में देखा जाता

---

१. तां.ब्रा. २२.१५.१

२. तां.ब्रा. २२.१५.१०

३. तै.सं. ७.२.२.१

४. इस्तु. ५.६१ टि.

है। कुसुरुविन्द[1], कुसुरुबिन्द[2], असुरबिन्द[3], कुसुरबिन्द[4]। कुसुरुबिन्द[5] का सप्तरात्र यज्ञ सत्याषाढ श्रौतसूत्र में भी उपलब्ध होता है[6]।

१०. प्रोति कौशाम्बेय-कुसुरुबिन्द के पुत्र होने के कारण कौसुरुबिन्दि नाम उपयुक्त ज्ञात होता है। प्रोति कौशाम्बेय यह पैतृक वंशज नाम है। कुशाम्ब के पुत्र कौशाम्बेय हो सकते हैं। श.ब्रा. से ज्ञात होता है कि उद्दालक इस कुमार के आचार्य थे[7]। यह भी प्रतीत होता है कि यह उनका पौत्र था क्योंकि कुसुरुबिन्द उद्दालक का पुत्र है। कौसुरुबिन्द कुसुरुबिन्द का पुत्र था। कुशाम्बपुत्र-कुसुरुबिन्दकुशाम्बवंशज भासित होते हैं, जो गोतम थे।

११. सोमदक्ष कौश्रेय -- कुश्रि का वंशज (पुत्र) था। इस आचार्य का नाम काठक और मैत्रायणी संहिताओं में है[8]। काठ.सं. में सहस्र इष्टका में सोमदक्ष कौश्रेय ने श्यामवर्ण के लिये उपधान किया, स्थापित कराया[9]। इस प्रकार इनका यज्ञविधि-प्रवर्तक के रूप में वक्तृत्व परिज्ञात होता है। काठ.सं. [10]और अन्यत्र भी इनके मत प्राप्त होते हैं। यह कुश्रि के वंशज होने के कारण गोतम हैं। कपिष्ठलकठ संहिता में भी इनका नाम उपलब्ध होता है[11]।

---

१. तां.ब्रा. २२.१५.१.१०
२. तै.सं. ७.२.२.१
३. जै.ब्रा. १.७५
४. षड्विंश ब्रा. १.१६
५. शां.श्रौ. १६.२२.१४
६. स.श्रौ. १७.८.३५
७. श.ब्रा. १२.२.२.१३
८. मै.सं. ३.२.७
९. काठ.सं. २०.८
१०. काठ.सं. २१.९
११. क.सं. ३१.१०

१२. बाभ्रव- यह बभ्रु के पुत्र होने के कारण बाभ्रव हुआ और गोतम वंशज है। वंश ब्राह्मण से ज्ञात होता है कि शूष वाह्नेय भारद्वाज के शिष्य के रूप में यह आचार्य कोटि में पढ़ा गया[१]।

१३. अत्यंहस् आरुणि :- तैत्ति. ब्राह्मण (३.१०.९.३-५) से प्रमाणित होता है कि इस आचार्य ने सवित्र नामक अग्नि के विषय में प्लक्ष दयापाति से प्रश्न करने के लिये एक शिष्य को भेजा था। इस अविनय से यह शिष्य अतिनिन्दित था। आरुणि इस विशेषण से ज्ञात होता है कि आरुणि के वंश में उत्पन्न हुआ और गोतमवंशीय के रूप में प्रसिद्ध हुआ।

१४. राध गोतम - गोतम वंशज दो आचार्यों के नाम वंश ब्राह्मण में आये हैं जिनमें एक राध गौतम है[२]।

१५. हारिद्रुमत गौतम - ये हरिद्रुमत के पुत्र हैं। छान्दोग्य उपनिषद् में इनका गौतम वंशज नाम है[३]। सत्यकाम जाबाल ने कामना की कि मैं ब्रह्मचर्य व्रत में रहूँ। ऐसा विचारकर हारिद्रुमत गौतम के पास गये। यद्यपि सत्यकाम जाबाल के पिता का नाम ज्ञात नहीं था तथापि इनका उपनयन कर कहा - ये (४००) चार सौ गायें हैं। यदि ये सब गायें सहस्र हो जाएँ तो आ जाना। सहस्र संख्या गायों की हो जाने पर वह आया। गुरु ने उसे ब्रह्मज्ञान दिया।

१६. साति गौतम - सन् धातु से क्तिच् प्रत्यय होने पर आत्व हो जाने पर साति इस शब्द की व्युत्पत्ति हुई। सन् धातु (**"षणुदाने"**) दान अर्थ में है। जो सदा दान करता हो उसे साति कहा जायेगा। वंश ब्राह्मण से ज्ञात होता है कि यह गौतमकुल में उत्पन्न हुआ था[४]।

---

१. वंश ब्रा. २

२. वं.ब्रा. २, २-३

३. छा.उ. ४.४.३

४. वंश ब्रा. १

सप्त गौतम – माध्यन्दिन और काण्व दोनों शाखाओं में प्राप्य बृहदारण्यकोपनिषत् की वंशसूचियों के अवलोकन से सात गौतम आचार्यों की उपलब्धि होती है। दोनों उपनिषदों में तीन गौतम आचार्य तो समान रूप से ज्ञात होते हैं जो "भारद्वाज"[१] गोतम[२] और वात्स्य[३] के शिष्य हैं पर दोनों उपनिषदों में दो दो आचार्यों के नाम भिन्न-भिन्न हैं। काण्वबृहदारण्यकउपनिषद् में जो दो गौतम भिन्न हैं वे दोनों अग्निवेश्य[४] और सैतव प्राचीन योग्य के शिष्य हैं[५]। माध्यन्दिन बृहदारण्यक उपनिषद् में जो दो गौतम आचार्य भिन्न-भिन्न हैं वे दोनों वात्स्य[६] और बैजवापायन वैष्ठपुरेय के शिष्य हैं[७]। इस प्रकार इस परिच्छेद में २३ गोतमों का वेदों में प्रवक्तृत्व और उनका परिचय निरूपित किया गया।

आदि से इस परिच्छेद तक ५ परिच्छेदों में ३६ गोतमों के वेदोपबृंहण में योगदान का स्वरूप वर्णित किया गया है। शेष १६ गोतमों का षष्ठ परिच्छेद में प्रवक्तृत्व और मन्त्रद्रष्टृत्व व्यक्त किया जाएगा।

निष्कर्ष :

वाजश्रवस ऋषि – ब्राह्मण ग्रन्थ का ज्ञान प्राप्त करने पर प्रत्येक महर्षि ने दो-दो स्त्रियाँ प्राप्त कीं।

अरुण औपवेशि गौतम तै., काठ., मै. संहिताओं में ऋषिवाचक यज्ञ विधानवेत्ता, प्रवक्ता और समस्त मतों का आक्रान्तकर्ता है। प्रातः सायं कालिक अग्निहोत्र को शत्रुओं के लिए वज्ररूप मानता है। वैश्वानर विद्या प्राप्ति के लिए पाँच आचार्य सत्ययज्ञ पौलुषि, महाशाल

---

१. २.६.२ काण्व २.५.२२, ४.५.२७ माध्यं

२. २.६.३, २.६.३. काण्व = २.२.५.२२, ४.५.२८ माध्यं

३. २.६.३, ४.६.३ काण्व = २.५.२०, २२, ४.५.२६

४. २.६.१ काण्व

५. २.६.२ काण्व

६. माध्य. २.५.२०, ४.५.२६,

७. माध्य. २.५.२०, ४.५.२६

जाबाल, बुडिल आश्वतराश्वि, इन्द्रद्युम्न भाल्लवेय और जन शार्कराक्ष्य, इनके पास गये। उन सभी वैश्वानर विद्या-प्राप्ति-हेतु अश्वपति कैकेय के पास जाकर विद्या प्राप्त की। आप सभी तो अनूचान हैं। वृद्ध होने पर ज्ञाति जन ने अरुण से कहा - अग्नि आधान करो और आहिताग्नि हो। अरुण ने कहा – वाणी पर संयम करने वाला ही जनकल्याण कर सकता है। आहिताग्नि असत्य न बोले। यह नियम ही श्रेयस्कर है।

आरुणि उद्दालक – अरुण का पुत्र तथा उनका शिष्य भी था। इसने अरुण से विद्या प्राप्त की। यशस्विन् भी इसका नाम है। विविध यज्ञ प्रवक्ता तथा कुरु पञ्चाल देश निवासी था। यह याज्ञवल्क्य तथा कौषीतकि का गुरु था। यज्ञ के विषय में १६ स्थानों पर इसके सर्वश्रेष्ठ मत हैं। दर्शपूर्णमास इष्टि में वह १५ दिन में, उत्पन्न शत्रुओं को शकट के धुर स्पर्श से नष्ट करता है। प्रखर पाण्डित्य ब्रह्मवर्चसी, आरुणि भारत में अतिप्रसिद्ध विद्वान् था। उस समय उसके समक्ष वैसा कोई विद्वान् नहीं था। वह उदीच्य देश में ब्रह्मा के रूप में वृत (चयनित) हुआ। श्रेष्ठ विद्वान् के लिये एक निष्क दिया जाता था। भारत में यह परम्परा पहले से प्रचलित थी। आरुणि की विद्वत्ता देख उदीच्य ब्राह्मण भीत थे। उसके प्रति ईर्ष्या करते हुए उन्होंने आपस में मन्त्रणा की कि यह ब्रह्मा पञ्चालदेशवासी है। यदि यह निष्क का आधा हम लोगों को नहीं दे तो इसे पराजित कर दिया जाए। उदीच्य (कश्मीरी) ब्राह्मणों ने शौनक स्वैदायन नामक आचार्य को शास्त्रार्थ के लिये सन्नद्ध किया। उन लोगों ने कहा कि उद्दालक वीर के साथ ब्रह्म संबंधी शास्त्रार्थ करना है, जहाँ हमारी विजय हो। स्वैदायन ने कहा आप लोग यहीं रुकें। मैं जाकर उन्हें जान लूँ। स्वैदायन उद्दालक के पास गया और प्रश्न प्रारम्भ किया। उद्दालक ने निष्क स्वैदायन को सुवर्ण देते हैं। तुम वेदज्ञ होने के कारण निष्क के अधिकारी हो। स्वैदायन निष्क को कहा - स्वैदायन तुम अनूचान हो। लोग सुवर्णविद् को उद्दालक के पास रखकर वहाँ से चल दिया। स्वैदायन के आने पर उदीच्य ब्राह्मणों ने पूछा - गौतमपुत्र कैसा है। स्वैदायन ने कहा - ब्रह्मा ब्रह्मपुत्र जैसा होता है, वैसा ही वह है। जो उसके साथ विवाद करेगा उसका सिर गिर जायेगा, वे कश्मीरी ब्राह्मण उद्दालक का वैशिष्ट्य जानकर

अपन-अपने स्थान को चले गये। इस आख्यायिका से यह प्रकट होता है कि उद्दालक स्वयं विद्वान् होते हुए भी दूसरं विद्वान् का आदर करता है। अपने अस्तित्व को विस्मृत कर आये विद्वान् की स्तुति करता है। इससे उसकी नम्रता प्रकट होती है। आख्यायिका का यह आशय है कि आरुणी उद्दालक न केवल पञ्चाल तथा उदीच्य देश कश्मीर में अद्वितीय विद्वान् था अपितु पूरे भारत में उत्कृष्ट विद्वान् था।

गोपथ ब्राह्मण में भी ऐसी ही आख्यायिका है। शत. ब्राह्मण में आख्यायिका है कि दर्शपूर्ण मास में ही सर्वोत्पत्ति हेतुत्वकथन (११.४. १.१-१६, १९) है। दांत क्यों गिरते हैं, क्यों उत्पन्न हो जाते हैं। इस विषय में रोचक तथा वैज्ञानिक ढंग से विचार किया गया है।

आरुणि उद्दालक ने अपने शिष्य याज्ञवल्क्य को समस्त विद्या और ज्ञान का उपदेश दिया और कहा - जो कोई इसको शुष्क स्थाणु (वृक्ष) पर इससे सींच दें तो शाखायें उत्पन्न हो जायँ, पत्ते उग आएँ। आरुणि का मत है कि जिस क्षत्रिय को इन व्याहृतियों से अभिषिक्त कर देते हैं वह क्षत्रिय समस्त आयु को प्राप्त करने में समर्थ होता है। अपनी विजय से समस्त शत्रुओं को आक्रान्त कर सम्पूर्ण भोग प्राप्त करता है। आरुणि को मधु विद्या का ज्ञान अपने पिता ब्रह्मासे प्राप्त हुआ। प्राचीन शाल औपमन्यव आदि पांच आचार्य आरुणि के पास वैश्वानर विद्याध्ययन के लिये गये। इससे विद्वानों में आरुणि की श्रेष्ठता मानी जाती है।

चित्र गार्ग्यायणि ने यज्ञ में आरुणि का वरण किया। इससे स्पष्ट है कि भारत में उस समय आरुणि के समान कोई विद्वान् नहीं था। ऋग्वेद की औद्दालकि शाखा है तथा आरुणेय शाखा भी है।

श्वेतकेतु औद्दालकि आरुणेय – शतपथ ब्राह्मण में इनके ८ मत हैं जिससे ये यज्ञ के विधि-वेत्ता प्रमाणित होते हैं। इन्होंने यज्ञ करते समय ऋत्विजों का वरण बड़ी निपुणता के साथ किया था जिसकी प्रशंसा आरुणि ने की थी। इनका मत है कि त्रयी विद्या का जो शेष है, वह मधु है। कामना या विशेष उद्देश्य के रूप में मधु का

भक्षण किया जा सकता है। यह श्वेतकेतु मौलिक विचारों को प्रवर्तक है। क्योंकि यह ब्रह्मचारियों के लिए वर्जित मधु-भक्षण की अनुमति देता है। श्वेतकेतु की यज्ञतत्व की विज्ञता परिलक्षित होती है।

श्वेतकेतु के प्रति पिता उद्दालक का कथन – ब्रह्मचर्य नियम से रहो। सौम्य! हमारे कुल का गोतम गोत्रीय व्यक्ति बिना वेद पढ़े ब्रह्मबन्धु या ब्राह्मण नहीं रहता। श्वेतकेतु १२ वर्ष की अवस्था के बाद पढ़ने गया। २४ वर्ष की अवस्था में चारों वेदों का उसने अध्ययन किया। उस समय की शिक्षाप्रणाली अत्युत्तम थी।

उद्दालक ने श्वेतकेतु को अणु भाव तथा अणिमा को बताकर ब्रह्मज्ञान दिया। श्वेतकेतु ने चित्र गार्ग्यायणि का यज्ञ कराया। यह श्रुतर्षि था।

श्वेतकेतु का विशेष नियम – विवाहित होने पर भी वर्ष में दो-दो मास गुरुकुल में और अधिक वेदाध्ययन के लिये वास करें। यज्ञ त्रुटि-निरीक्षण में, निरीक्षण संबंधी विवाद में श्वेतकेतु प्रामाणिक अधिकारी विद्वान् माने जाते हैं।

नचिकेता – यह पहला मानव है जिसने यम के प्रलोभनों में न आकर यमराज से मृत्युविद्या का रहस्य प्राप्त किया।

गोतम वंश के ऋषियों का स्वरूप

१. उशिज - नाम की व्युत्पत्ति-वश् कान्ति अर्थ वाली धातु से "वशेः कित्" उ. (२,७१) सूत्र से इञ् प्रत्यय होने पर संप्रसारण पूर्व रूप में इस शब्द की सिद्धि हुई। निरुक्त ६.१० दुर्ग-भाष्य-विवृति में उशिङ् नामक ऋषि का उल्लेख है। उशिज (आश्व श्रौ. १२.११.३ आप. श्रौ. २४.६.१५ हि. श्रौ २१.३.९) और उशिजवत् (आप. श्रौ. २४.६.१५ हि. श्रौ २१.३.९) दोनों पद गोत्रों के प्रवर-वर्णन के प्रसङ्ग में बहुत से श्रौत-सूत्रों में पाये जाते हैं।

इनका नाम प्रज्ञादिगण (पा. ५.४.३८) में आया है।

प्रवरों में गणना करने के कारण ये ऋषि ही हैं। यही उशिज कक्षीवान् के पिता थे। जिसके विषय में "कक्षीवन्तं य औशिजः" (ऋ. सं. १.१८.१) आदि मन्त्रों में कक्षीवान् औशिज रूप धारण करते हैं अथवा औशिज विशेषण से युक्त होते हैं। जो कोई बृहद्देवता (४. २४) के प्रमाण से यह कहते हैं कि उशिक् नाम की कोई दासी थी, उसके पुत्र कक्षीवान् हैं, यह समीचीन नहीं है। ऋक् संहिता के अनुवादक रामगोविन्द त्रिवेदी कहते हैं कि कक्षीवान् दासी के पुत्र नहीं हैं। सभी प्रवर पिता के नाम से देखे जाते हैं, माता के नाम से नहीं। अतः प्रवरों में पठित होने के कारण उशिज ऋषि का पुत्र कक्षीवान् प्रमाणित होता है। उशिज प्रवर ऋषि थे।

२. **सुकीर्ति काक्षीवत** - यद्यपि यह पद संहिताओं में अनेक बार प्रयुक्त हुआ है तथापि इसका नाम उपलब्ध नहीं होता। ऐतरेय ब्राह्मण (६.२९) में "अप प्राच" यह सूक्त सुकीर्ति शब्द से कहा गया है। इसी ऋषि का वह सूक्त है। ऐ. त. ब्राह्मण में स्पष्ट रूप से सुकीर्ति

काक्षीवत ऐसा प्रयोग उपलब्ध होता है। जहाँ कक्षीवान् का पुत्र सुकीर्ति कहा गया है। यह सुकीर्ति सात मन्त्र वाले (ऋ. सं. १०.१३१) सूक्त के द्रष्टा हैं।

३. **शबर** - कक्षीवान् के दो पुत्र उपलब्ध होते हैं – सुकीर्ति और शबर। पर उस कक्षीवान् के सहस्र पुत्र थे। इस शबर का नाम पाणिनीय गणपाठ (४.१.१०४) के बिदादि गण में पढ़ा गया है।

बृहद्देवता ८.७२ के अनुसार शबर ऋषि ने **"मयोभूः"** इस सूक्त का दर्शन किया। दूध देने वाली अनेक रूप वाली गायों का जहाँ संस्कार हुआ। यह ऋषि ऋ. सं. दशम मण्डल के १६९ वें सूक्त का द्रष्टा है जिसमें ४ मन्त्र हैं। घास के लिए वन में जाने वाली गायें इस सूक्त के आदिम दो मन्त्रों से अभिमन्त्रित की जाएँ। आश्वलायन गृह्यसूत्र २.१०.५ में इस सूक्त का विनियोग है।

४. **दीर्घश्रवा औशिज** - दीर्घश्रवस् पद ऋ. सं. (१०.२३.३) में आया है। पर सायण वहाँ वाज (अन्न) का विशेषण मानते हैं। ऋ. सं. १.११२.११ मन्त्र में सायण का कथन है कि उशिक् नाम की दीर्घतमा की पत्नी थी जिसका पुत्र दीर्घश्रवा नाम के किसी ऋषि ने अनावृष्टि (अवर्षण) होने पर जीवनयापन के लिए वाणिज्यवृत्ति स्वीकार की। उस ऋषि ने वृष्टि होने के लिए अश्विन देवों की स्तुति की। उन अश्विनों ने मेघों को प्रेरित किया। तत्पश्चात् अपेक्षित वृष्टि हुई। ताण्ड्य ब्राह्मण (१५.३.२४-२५) में दीर्घश्रवा चिरकाल तक अन्नाद्य (अन्न) नहीं प्राप्त कर सका।

दीर्घश्रवस् साम का दर्शन करने पर उन्होंने समस्त दिशाओं से अन्नाद्य प्राप्त किया। कात्यायन श्रौतसूत्र (२२.६.७) के अनुसार अपने स्तोत्रिय में यज्ञायज्ञिय स्थान में दैर्घश्रवस् साम का प्रयोग करे तो वह जीवन धारण करे। इन दो प्रमाणों से सुस्पष्ट हुआ कि दीर्घश्रवा ने साम का दर्शन किया। दीर्घश्रवा के दो साम मन्त्र हैं। अतः दीर्घश्रवा मन्त्रद्रष्टा ऋषि है।

५. **घोषा काक्षीवती** - कक्षीवान् एक ऋ. सं. (१.१२२.५) के मन्त्र में स्तुति करते हैं – हे अश्विनों! घोषा ब्रह्मवादिनी ने अपनी शरीर की त्वचा के रोगनाश-हेतु आप की स्तुति की। वैसी स्तुति मैं भी करता हूँ। घोषा (ऋ. १०.४०.५) स्वदृष्ट मन्त्र में कहती है – हे अश्विनों आप दोनों के चारों तरफ जाती हुई काक्षीवती (कक्षीवान् की पुत्री) घोषा मैं कह रही हूँ कि किस तरह आप दोनों ने अहोरात्र कर्म सिद्ध किया तथा शत्रुओं को दूर करने में आप समर्थ हुए (ऋग्वेद खिलभाग १.३.५)। ज्ञात होता है कि घोषा पुत्र-सन्तान की कामना करने वाली थी। उसने अश्विनौ की स्तुति से सुहस्त्य नामक पुत्र को प्राप्त किया। कक्षीवान् (ऋ. १.११७.७) स्वदृष्ट मन्त्र द्वारा अश्विनों की स्तुति करते हैं। घोषा नाम की ब्रह्मवादिनी कक्षीवान् की पुत्री थी जो कुष्ठ रोग के कारण किसी वर को नहीं दी गई थी।

पितृ–गृह में रहती हुई वृद्ध हो गई। अश्विनों के अनुग्रह से कुष्ठ नष्ट होने से उसने पति को प्राप्त कर लिया। हे अश्विनों पितृ संबद्ध घर में अर्थात् स्वजनक के घर में रहती हुई कुष्ठ रोग के कारण पति को न प्राप्त करने वाली, पिता के समीप में रहकर वृद्धावस्था को प्राप्त करने वाली ब्रह्मवादिनी घोषा के रोग को दूरकर पति प्रदान किया।

इस घोषा ने ऋग्वेद के दशम मण्डल के ३९, तथा ४० वें इन दो सूक्तों का दर्शन किया। उनमें २८ मन्त्र हैं। यह स्त्रियों के समुदाय में प्रथम ब्रह्मवादिनी हुई (बृ. दे. २.८२, बृ. दे. ७.४२–४८)। काक्षीवती घोषा पापरोग से ६० साठ वर्ष तक पिता के घर में रही। पति–पुत्रविहीन वह कहती है – मेरे पिता कक्षीवान् ने अश्विनों की स्तुति करके युवावस्था, आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य और समस्त प्राणियों के हितार्थ वित्त प्राप्त किया। मुझे भी मन्त्र प्राप्त हों, मैं भी स्तुति करुँगी। दो सूक्तों से घोषा ने स्तुति की। अश्विनों ने सन्तुष्ट होकर इस घोषा को पति और सुहस्त्य नामक पुत्र दिये।

६. **घौषेय सुहस्त्य** ऋग्वेद (ऋ. खि. १.३.५ मन्त्र) से ज्ञात होता है कि यह घोषा का पुत्र है। यह ऋ. सं. दशम मण्डल के ४१ वें सूक्त का द्रष्टा है जिसमें ३ मन्त्र हैं।

इस ऋषि द्वारा दृष्ट मन्त्र (ऋ. सं. १०.४१.३) में सायण सुहस्त्य नाम वाले ऋषि का निर्देश करते हैं। ऋक् तन्त्र (५.४.७ सूत्र) में दीर्घ है। अनुक्रमणिका में सुहस्त्य घौषेय सुहस्त्या मृज्यमानः सुहस्त्या (सा. १.५१७ सा. १.४.१९) मृज्यमानः सुहस्त्य – इस प्रकार प्रथम षष्ठ में यह वैनायकी नामक संहिता है, जिसका उपयोग करते हुए विनायक को प्रसन्न करता है। मृज्यमान सुहस्त्य (तां. १३.९.३) यह सिम शक्वरी का रूप है।

७. **उतथ्य** – पाणिनीय भोजवृत्ति में तथा शुक्लयजुः सर्वानुक्रमणिका में यह शब्द आया है। सत्याषाढ श्रौतसूत्र की प्रवरगणना में उतथ्य, उतथ्यवत् नाम से यह ऋषि है। निर्णय-सिन्धु में भी एक प्रवर के रूप में पठित है। वेदवेदाङ्ग में सर्वत्र उचथ्य शब्द है, हिरण्यकेशि श्रौत सूत्र को छोड़कर। अनुमान है कि उचथ्य शब्द ही कालान्तर में उतथ्य शब्द हो गया हो, पर यह मत समीचीन नहीं है। पुराणों में उतथ्य ही उपलब्ध होता है। पुत्र-परम्परा भी उचथ्य और उतथ्य की पृथक् पृथक् है। उचथ्य का पुत्र दीर्घतमा है और उतथ्य का पुत्र शरद्वान्। अतः ये दोनों महर्षि भिन्न हैं। निर्णयसिन्धु और धर्मसिन्धु दोनों स्थल पर औतथ्य प्रवर पाठ है।

८. **उशना** - ऋग्वेद (१.५१.१०) में कहा गया है – हे इन्द्र उशना ने अपने बल से तुम्हारे बल को अच्छी तरह से तीक्ष्ण किया, तेजस्वी बनाया (ऋ. १.८३.५)। कवि का पुत्र उशना असुरों को दूर करने के लिए इन्द्र का सहायक हुआ। ऋ. १.१२.१२ से विदित होता है – हे इन्द्र तुम्हारे लिये उशना ने मत्त करने वाले वज्र को प्रदान किया जो वृत्रासुर के मारने में समर्थ हुआ। ऋग्वेद (१.१३०.९) द्वारा ज्ञात होता है कि हे इन्द्र तुम उशनस् ऋषि की रक्षा के लिए स्वर्ग स्थान से आये हो। ऋ. ४.१६.२ में यह भी कहा गया है – हे इन्द्र उशना जिस प्रकार तुम्हारी स्तुति करता है उसी प्रकार यह यजमान स्तुति करता

है – अतः तुम इन्हें मुक्त कर दो। वामदेव अपनी विशिष्टता बताते हुए कहते हैं कि मैं ही उशना था। इस वामदेव के कथन से यह स्पष्ट होता है कि उशना अति-प्रसिद्ध ऋषि थे। वामदेव गर्भ में रहते हुए ही सर्वात्मा के रूप में उत्पन्न तत्त्वज्ञान से अपने अनुभव को प्रदर्शित करते हुए कहते हैं कि मैं कक्षीवान् विप्र ऋषि हुँ (ऋ. सं. ४.२६.१)। इन्द्र उशना के साथ आते हैं – इस प्रकार का मन्त्र उपलब्ध होता है क्योंकि मन्त्र में द्विवचन "आयातम्" इस रूप का उपयोग है (ऋ. ५. २९.९)। इन्द्र ने उशना के साथ वज्र को ऊपर किया था (ऋ. ५.३४. २)। कविपुत्र उशना ऋषि ने कहा – हे अग्ने होता के रूप में तुम्हें ही प्राप्त किया था (ऋ.८.२३.१७)। यह उशना ऋषि ऋक् संहिता के अष्टम मण्डल के ८.८४, (१-९) ९.८७. (१.९), ९, ८८.(१-८) तथा ९.८९. (१-७) कुल ३३ मन्त्रों के मन्त्रों के मन्त्रद्रष्टा ऋषि हैं।

इस मन्त्र में स्वयं उशना का कथन है कि अतीन्द्रिय द्रष्टा, मेधावी, अग्रगामी मनुष्यों के लिए व्यापक भासित होने वाले धीमान् उशना हैं। उशना ने कवित्व के कारण गायों से अन्तर्हित दूध प्राप्त किया (ऋ. ९.८७..३ कौ. २.२९)। गायों में दुग्ध-प्राप्ति का सर्वप्रथम ज्ञान उशना को हुआ। इस प्रकार दुग्ध-विज्ञान के आविष्कारक सर्वप्रथम उशना सिद्ध हुए। मन्त्रद्रष्टा वृषमाण उशना के समान इन्द्र आदि की उत्पत्ति को सम्यक् रूप से प्रकट करता है (ऋ. ९.९७.७ कौ. २.४६६)। उशना इन्द्र और अग्नि से पूछता है – तुम दोनों किसलिए आये हो, हम लोगों पर अनुग्रह करने के लिए। ऐसा उन इन्द्र और अग्नि के प्रति कहता है (ऋ. १०.२२.६)। उशना ने सम्यक् ज्ञान का प्रवचन किया (खिल ५.१.१)। उपर्युक्त ९ प्रमाणों से प्रमाणित होता है कि उशना इन्द्र का सखा, इन्द्र की सहायता कर रहा था। इन्द्र के वज्र का तक्षण किया, उसे छील छालकर तीक्ष्ण किया। इन्द्र को बल दिया या सेना प्रदान की। पर तैत्तिरीय संहिता तथा अन्य श्रौतसूत्रों में उशना काव्य असुरों का पुरोहित था, ऐसा उपलब्ध होता है। इससे स्पष्ट है कि ऋग्वेद में देवताओं का असुरों के साथ विरोध नहीं था। क्योंकि यदि विरोध और वैमनस्य रहता तो उशना काव्य इन्द्र की सहायता नहीं करता, अपितु असुरों की सहायता करता। इन्द्र की

विजय में किसी प्रकार का सहयोग नहीं करता। देव तथा असुरों के साथ विरोध पश्चात्कालिक है। इन्द्र ने उशना काव्य के लिए धन दिया (ऋ. ६.२०.११)। उशना ने गायों का अन्वेषण किया (शौ. २०.२५.५)।

उक्थ के शसन में ऋग्वेदीय मन्त्रों के प्रकथन में इसी उशना की उपमा दी जाती है (शौ. २०.७७.२, कौ. १.५२४, कौ. २.४६६)। मित्र और वरुणदेवों ने पहले उशना काव्य की रक्षा की थी। (शौ. ४.२९.६)

ब्राह्मण भाग में उशना - उशना काव्य उद्‌गाता के द्वारा हम लोग दीक्षा ग्रहण करें-इस विचार से असुर बाद में आए। यह तुम्हारे लिए उद्‌गायन करे - सामवेद के सामों का उच्च स्वर से सामगानविधि से उच्चारण करे। (जै. उ. २.३१) उशना काव्य से कहा गया – जो तुमने मेरे लिए गायन किया तो क्या होगा। (जै. उ. २.३. १८)। उशना काव्य असुरों का पुरोहित था। उसको देवताओं ने कामदुधा के रूप में जब चाहे जिस रूप में दोहन करें – ऐसा विचार किया। उस उशना के लिए उपयोगी साम प्रदान किया। वे उशना को दिए गये साम कामदुधा कहलाते हैं (तां. ब्रा. ७.५.२०)। वायु ने उशना को बढ़ाया (१६) तो वह प्राणवीर्य को ही बढ़ाया। प्राण ही उशना संबंधी है (१७)। वायु ही उशना है। तत्संबंधी साम औशन है (१९)। उशना काव्य ने कामना की कि अन्य काव्यों के जो-जो लोक हैं, उन-उन लोकों को मैं प्राप्त करूँ। उसने तपस्या की और औशनस् साम का दर्शन किया। उस लोक को प्राप्त किया जो इतर काव्यों का था। उसने कामना की और कामसनि साम काम (मनोरथ) को देने वाले औशनस् साम का दर्शन किया। उस साम से काम (मनोरथ) की प्राप्ति होती है (१४.१२.५)। काम प्रकाव्य को उशना की तरह ब्रुवाणः कहते हुए वाराह संबंधी अन्त्यसाम पुरुषव्रत में है। यह वैष्णवी नाम की संहिता है। इस संहिता का उपयोग करते हुए विष्णु को प्रसन्न करता है (साम. १.४.१७, औशन साम आ. १.५०.७.५.११, १.५०.९)।

मैं कवियों में उशना कवि हूँ (गीता १०.३७)। इससे ज्ञात होता है कि समस्त कवियों में श्रेष्ठ उशना कवि है जिन्हें श्रीकृष्ण ने अपनी आत्मा माना।

वेदाङ्ग में - उशना शब्द की व्युत्पत्ति - वश् धातु से कनसि प्रत्यय (पा. ४.२३९) उ पर सम्प्रसारण होने से शब्द सिद्धि हुई। अषाढासि मन्त्र से अषाढा पुत्री की उशना ने स्तुति की (च. अ. १६. २५)। उशनस् का साम व्रजं कृणुध्वं है (चा. अ. ३८.१६)। उशनस् काव्य के लिए दही और सक्तु (सत्तू) का हवन करता है (कौ. सू. १३९.६)। जिस दिशा में शुक्र उदित हो उस दिशा में राजा युद्ध न करे (आ. गृ. ३.१२.१६)।

एक ऋचा में उशना की स्तुति हुई है (बृ. दे. ८.९)। आतिथ्य इष्टि में गायत्री छन्द में ऋक् में उशनस् साम का गान करे (ला. श्रौ. १.६.२२, बौ. श्रौ. प्र. १४.१.२)। उशना गोतम गोत्र का एक प्रवर है। अन्य ग्रन्थों में भी उशनस् के मत निर्दिष्ट (समाविष्ट) हैं (ला. श्रौ. ६.१२.१४, १.५.१४)।

९. **करेणुपाल - कारेणुपालि** - पाणिनीय गणपाठ (२.४.६१) में यह शब्द पाणिनि द्वारा पठित है। निर्णय सिन्धु में प्रवरों में दश गौतम आङ्गिरस प्रवरों में करेणुपालय नाम आया है। यहाँ शुद्ध नाम करेणुपालि के अपत्य (सन्तान) होने के कारण कारेणुपालय होगा। कारेणुपालय (बौ. श्रौ.. प्रवर १५.१, २) तथा करेणुपाल शब्द (वै. ध. ४.४.५ तथा बौ. श्रौ. प्रवर १५.३, ४) में है। प्रवर गण में पाठ होने से यह करेणुपालय गौतम ही है।

१०. **कुमण्ड - कौमण्ड** - यह नाम (वै. ध. ४.४.३. बौ. श्रौ. प्र. १२.१, २, ३, ४) गौतम गोत्रीय प्रवरों तथा निर्णय सिन्धु में भी आया है।

११. **सोमराजकः** - यह नाम आश्वलायन श्रौत सूत्र (१२-११, १) में पढ़ा गया है। गोतमगोत्रीय दशप्रवरों में एक प्रवर निर्णयसिन्धु में गिना गया है।

१२. **राघुवः** - यह शब्द वेद और वेदाङ्ग में उपलब्ध नहीं होता। उपनिषद् में राघव शब्द आया है जो इस शब्द से भिन्न है। निर्णयसिन्धु और धर्मसिन्धु में गोतमगोत्रीय प्रवरों में यह शब्द है। निर्णयसिन्धु में इसका मूल विचारणीय है, ऐसा लिखा है। राघुव गण का मूल बौधायन श्रौत प्रवर और सत्याषाढ़ प्रवराध्याय में भी उपलब्ध नहीं होता।

विशेष - उपर्युक्त करेणुपाल या कारेणुपालि, कुमण्ड या कौमण्ड सोमराजक और राघुव चारों नाम संहिता, ब्राह्मण आरण्यक उपनिषद् अर्थात् वेदों में नहीं आये हैं। वेदाङ्गों से पाणिनीय गणपाठ, बौधायन श्रौत प्रवर, आश्वलायन श्रौत सूत्र, वैखानस धर्मसूत्र और धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में (निर्णय सिन्धु और धर्म सिन्धु) ग्रन्थों में आये हैं। प्रवरों में गोतम गोत्र के अन्तर्गत ये नाम पठित हैं। इतने से यह तो सिद्ध है कि ये चारों गोतमगोत्रीय हैं। पर इनका मूल वेद में उपलब्ध नहीं होता। वेदाङ्ग में ही उपलब्ध होता है। अतः यह कहा जा सकता है कि वैदिक वाङ्मय में ये नाम उपलब्ध हैं।

१३. **शारद्वत या शरद्वान्** - पाणिनीय गणपाठ (४.१.१०२४ तथा ४.१. १०२) में शरद्वत् शब्द गिना गया है। शरद्वत् तथा शरद्वन्त शब्द रूप (बौ. श्रौ. प्र. ११.१, ३.४, ३.१४ तथा वै. ध ४.४.२) में आये हैं। यदि भृगुगोत्र का कोई नाम होगा तो उसे शारद्वतायन कहेंगे। यदि उससे भिन्न गोत्र का होगा तो उसे शारद्वत कहेंगे। निर्णयसिन्धु में भी शारद्वत, गौतमगोत्रीय प्रवरों में पढ़ा गया है। शरद्वान शब्द ऋग्वेद संहिता (१.१८१.६) में आया है। पर सायणमत से शब्द ऋषिवाचक नहीं है। अतः सायण के अतिरिक्त भाष्यो में इस शब्द का अर्थ अवलोकनीय है। यह उतथ्य पुत्र शरद्वान् गौतम है ऐसा ब्रह्माण्ड पुराण से ज्ञात होता है।

१४. **गाता** - गातृ शब्द संहिताओं में अनेक बार आया है। पर वहाँ व्यक्तिवाची नहीं है। अंशुर्धानंजय्य ने राध गौतम से सामवेद का अध्ययन किया। राध गौतम ने अपने पिता गाता गौतम से सामवेद पढ़ा। इससे प्रमाणित होता है कि राध गौतम का पिता गाता गौतम था।

गाता गौतम ने लामकायन संवर्गजित ऋषि से सामवेद का अध्ययन किया।

१५. **संकर गौतम** - पुष्पयशा औदव्रजि ने संकर गौतम से सामवेद का अध्ययन किया (वं. ब्रा. ६.५)। संकर गौतम ने अर्यमराध गोभिल से तथा पूषमित्र गोभिल से सामवेद का अध्ययन किया (वं. ब्रा. ३.६)।

अयास्य आङ्गिरस - गोतम गोत्र के त्रिप्रवर में आङ्गिरस अयास्य गोतम सत्याषाढ श्रौत सूत्र (२१.३.९) में है। अतः यह गोतम गोत्रीय है। इस कारण इसका परिचय और वेदमन्त्रों के योगदान का उल्लेख हो रहा है।

१६. **अयास्य नाम की व्युत्पत्ति** - सायण का कथन है कि अयास्य पञ्चवृत्ति और मुख्य प्राण है।[१] वह अयास्य आस्य अर्थात् मुख से अयते निकलता है, उस मुख्य प्राण का उपासक अङ्गिरा भी उपचार से अयास्य कहा गया है। तथा सामवेद के अध्येताओं के द्वारा कहा गया है - अयास्य ने उस उद्गीथ की उपासना की, उसी को अयास्य कहते हैं, मुख से जो निकलता है या जाता है। इस कारण (छा. उ. १.२.१२) अथवा यह आस्य (मुख) में रहता है। अतः अयास्य है। वाजसनेयक यजुर्वेद अध्येताओं का कथन है — वह कहाँ गया, क्या हुआ जो इस प्रकार आसक्त मिल गया, जुड़ गया अर्थात् मुख के अन्तर्गत है कि जो अयास्य आङ्गिरस, अङ्गों का रस है (श. ब्रा. १४. ४.१.९ बृ. उ. १.१.८)। यह अयास्य पूर्ववत् उपासक भी है।

यसु प्रयत्ने - प्रयत्न अर्थ में यस् धातु से (यासः प्रयत्नः) तत्र भवो यास्यः इस रूप में भवे छन्दसि इस सूत्र से यत् प्रत्यय होने पर यास्य बना। जो न आस्य (प्रयत्न) से हुआ, वह अयास्य है। प्रयास, प्रयत्न का अभाव हो, वह अयास्य नामक ऋषि है। बिना प्रयास की सब सिद्धियाँ या मनोरथ पूरे होते हैं, यह अयास्य शब्द का अर्थ हुआ।

---

१. सायण-भाष्य ऋग्वेद सं. १.६२.७

जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण में कहा है – उन व्युत्पत्तिकारों ने कहा यह मुख में है अयं वा आस्ये इति। यह आस्य मुख में है इस कारण यह अयमायास्य, अयमास्य बना परोक्षवृत्ति में अयमास्य से ही अयास्य शब्द की सिद्धि हुई[१]।

परिचय - इनके पिता अङ्गिरा ऋषि थे, यह ऋग्वेद से ज्ञात होता है[२]। यह अयास्य ऋषि असहाय (दूसरों की सहायता अन्य के बिना) लोगों के असदृश अर्थात् अनुपमेय अकेले ही समस्त प्राथमिक प्रजाओं का अतिक्रमण कर बढ़ रहे थे, वर्धिष्णु थे[३]। इस ऋषि का नाम ऋग्वेद[४] में ६ बार तथा अन्य संहिताओं में ६ बार आया है[५]। यह ऋषि अपने द्वारा दृष्ट मन्त्र में कहता है – हे सोम, तुम्हारी तरङ्ग को धारण करता हुआ मैं देवताओं का यजन करने जा रहा हूँ[६]।

काठक और मैत्रायणी संहिताओं में अयास्य उद्गाता अर्थात् साम वेद के ऋत्विक् उच्च स्वर से गायन करने वाले अर्थात् ऊर्ध्व लोक तक पहुँचाने वाले दिव्य आनन्द देने वाले थे[७]। ऐतरेय ब्राह्मण में हरिश्चन्द्र के राजसूय यज्ञ में अयास्य ऋषि उद्गाता ऋत्विक् के रूप में कार्यरत थे। तैत्तिरीय आरण्यक में चातुर्होत्र ब्राह्मण में सप्तहोतृ मन्त्र में अयास्य उद्गाता रूप से आये हैं[८]। यह ज्ञात रहे गोतमों की सामवेद की गौतमी शाखा थी। अतः उद्गाता के रूप मे अधिकतर गोतम ही

---

१. जै. उ. ब्रा. २.३.२.७

२. ऋ. सं. १०.६७.१

३. ऋ. सं. ९.४४.१

४. ऋ. १.६२.७, ८.६२.२, ९.४४.१, १०.६७.१, १०.१०८.८, १०.१३८.४

५. मै. १.९.१, ५, काठ. ९.९, १२ क. ८.१२, कौ. १.५०९, जै. १.५२.१३, शौ. २०.६९.१

६. ऋ. ९.४४.१

७. काठ. ९.९, १२, मै. १.९.१, ५, ऐ. ७.१६

८. तै. आ. ३.५.१

थे। यह अयास्य ही देवों के द्वारा भेजे जाने पर मनुष्यों में सप्त होतृ यज्ञ का प्रवर्तन किया[१]।

ताण्ड्य ब्राह्मण में – अयास्य आङ्गिरस ने आदित्य दीक्षितों का अन्न भक्षण किया। वे रोगग्रस्त हो गये। उन्होंने तपस्या की – तत्पश्चात् अयास्य ने दो आयास्य सामों का दर्शन किया। उन दोनों से उन्होंने उस रोग को दूर किया। कोई भी व्यक्ति उन दोनों आयास्य सामों से स्तुति करता हुआ रोगों को दूर करता है। एक समय इस लोक में अवर्षण हुआ, इस लोक से वृष्टि चली गई। उस समय अयास्य ने आयास्य साम मन्त्रों से पुनः धरती पर जल गिराया। कोई भी व्यक्ति इन अयास्यदृष्ट से आयास्य साम मन्त्रों से स्तुति करता हुआ वृष्टि गिरा सकता है, वर्षा कर सकता है। इन लोकों से एक बार अन्नाद्य या अन्न आदि भोग्य सामग्री इन लोकों से लुप्त हो गई, या अन्न का अभाव हो गया। अयास्य ने आयास्य साम मन्त्रों द्वारा अन्नाद्य गिराया। कोई भी व्यक्ति आयास्यों से स्तुति करता हुआ अन्नाद्य पर्याप्त मात्रा में प्राप्त कर लेता है[२]।

इस अयास्य शर्यात ने मानव का उद्गाता होकर उत्तर दिशा में बैठकर साम मन्त्रों से उद् गायन अर्थात् उच्च स्वर से लोकोत्तर गायन किया। उसने प्राण से देवताओं को देवलोक में धारण किया, अपान से मनुष्यों को मनुष्य लोक में स्थापित रखा। व्यान से पितरों को पितृलोक में स्थित किया। हिङ्कार रूपी वज्र से इस लोक से असुरों को हटाया। वह प्राण स्वरूप अयास्य ही है। प्राण स्वरूप होकर उसने उपर्युक्त कार्य सम्पादन किया[३]।

मनुष्य उत्तर दिशा में आए। अयास्य आङ्गिरस से हम दीक्षा प्राप्त करें। यह अयास्य उद्गाता तुम्हारे लिए गायन करे। अयास्य आङ्गिरस

---

१. तै. ब्रा. २.२.७.३, २.२.११.५

२. तां. ११.८.१०-१२

३. जै. उ. २.३.२.२-३, ८

से कहा – जो तूने मेरे लिए गायन किया, तब क्या हो। वह यह अयास्य "आ सेधति" चारों तरफ से सिद्ध करने वाला होने से अयास्य कहा गया है, अथवा वह (आस्य) मुख में (रमण करता है।) अर्थात् स्थिर रहता है इस कारण वह अयास्य कहलाता है[1]।

ताण्ड्य ब्राह्मण में कहा गया है अयास्यदृष्ट आयास्य साम की प्रतिष्ठा अर्थात् स्थापना के लिए तिरश्चीन नामक निधन का उच्चारण (गायन) किया जाता है। अयास्य आङ्गिरस ने आदित्य दीक्षितों के अन्न का भक्षण किया। वह अयास्य भ्रष्ट हो गया, अपने स्तर से निचले स्तर पर पहुँच गया। उस अयास्य ने इन आयास्य सामों का दर्शन किया या उनसे अपने को संपृक्त किया तथा उस भ्रष्टता को दूर किया। सप्तम दिन जो साम होता है वह उस भ्रष्टता को दूर कर देता है। वह सप्तम दैनिक सत्र ही उस दोष को नष्ट कर देता है[2]।

निष्कर्ष :

घोषा काक्षीवती – कक्षीवान् की पुत्री थी। कक्षीवान् का कथन है कि जिस तरह घोषा ब्रह्मवादिनी त्वग् रोग नाश के लिए हे अश्विनों! तुम दोनों की स्तुति की, वैसे ही मैं भी तुम्हारी स्तुति करता हूँ। यह स्तोककाया (कृश शरीर वाली) थी।

घोषा पितृ-गृह में रहती जीर्ण हो गई थी। उसने श्वित्र नष्ट होने पर पति प्राप्त किया। यह दशम मंडल के २८ मन्त्रों की द्रष्ट्री है। यह स्त्रियों में प्रथम ब्रह्मवादिनी है। उसने पितृ-गृह में रहते हुए ६० वर्ष की अवस्था के बाद अश्विनौ की स्तुति से पति तथा सुहस्त्य पुत्र प्राप्त किया।

उशना ने इन्द्र के बल (सेना) को ओजस्वी (तेजस्वी) बनाया। इसने असुरों को नष्ट कर इन्द्र की सहायता की। इसने वृत्र को नष्ट

---

१. जै. उ. २.३.१.२.८.१०, २.४.२.८

२. तां. ब्रा. १४.३.२१, २२

करने के लिए उसे मारने में समर्थ मदकर वज्र दिया। उशना की रक्षा-हेतु इन्द्र स्वर्ग से आये थे। वामदेव उशना की प्रसिद्धि को व्यक्त करता है कि मैं ही मनु, सूर्य, कक्षीवान् और उशना हूँ – ऐसा वामदेव ने गर्भ में ही सर्वात्मा के रूप में स्वयं को माना। उशना ३३ मन्त्रों का द्रष्टा है।

दुग्ध-विज्ञान के प्रथम आविष्कारक – इन्द्र ने उशना को धन दिया। उशना ने गायों का अन्वेषण किया। मित्र और वरुण ने उशना की रक्षा की थी। वायु ने उशना को बढ़ाया। उशना गोतम का एक प्रवर है।

अयास्य शब्द का अर्थ है – बिना प्रवास की सब सिद्धियाँ या मनोरथ पूरे होते हैं। हरिश्चन्द्र के राजसूय यज्ञ में सामवेद के उद्गाता थे। अवर्षण होने पर वृष्टि कराई। अयास्य साम से अन्नाद्य की प्राप्ति कराई। शर्यात मानव का उद्गाता भी है यह।

पौराणिक भाग

भूमिका

महर्षि राहूगण गोतम तथा गौतम के पाँच पराक्रम

१. राहूगण गोतम (वैदिक गोतम) लोकहित की दृष्टि से सर्वजनहिताय सरस्वती नदी (पञ्चाल) से सदानीरा नदी (बिहार) तक वैदिक यज्ञ सम्पन्न कराने हेतु, अयज्ञीय प्रदेश को यज्ञीय भूमि में परिणत करने हेतु वैश्वानर यज्ञीय अग्नि को लाए जिससे उत्तर भारत लाभान्वित हो सका।

२. पौराणिक गौतम का सर्वजनहिताय दक्षिण भारतीय जन के उद्धार-हेतु शङ्कर को प्रसन्न कर भागीरथी गंगा से भी बड़ी गोदावरी गङ्गा को शङ्कर जटाजूट से भूतल पर लाना तथा नासिक से पूर्वी समुद्र तक गंगासागर सङ्गम से पहले तक गोदावरी नदी के दोनों तटों पर अनेक तीर्थों को स्थापित करना भारत को महत्वपूर्ण योगदान रहा।

३. २४ वर्ष के दुर्भिक्ष में पूरे भारत के ऋषि-मुनियों तथा अन्य जनों को अन्नोपार्जन कर वैज्ञानिक खेती कर भक्तिभाव से सब को खिलाना, उनके ही तपोबल का चमत्कार था। जो सस्य (फसल) ओषधियाँ अन्न जब बोये जाते थे, उसी समय या उसी दिन काट लिये जाते थे।

४. शाश्वत चारों वेदों का प्रचार-प्रसार। ऋग्वेद के १४७५ मन्त्रों का दर्शन कर गोतम वंशजों ने ऋग्वेद के सप्तमांश (भाग) का उपबृंहण किया है।

ऋषि नाम	मण्डल नाम	सूक्त से सूक्त तक	मण्डल सं.	मन्त्र संख्या
राहुगण गोतम	१	७४ से ९३ तक	९-१०	२१४
नोधा	१	५८-६४	८-९	८५
दीर्घतमा	१	१४०-१६४		२४२
कक्षीवान्	१	११६-१२६		१६०
वामदेव	४	१-४१, ४५-४८		५६६
		चतुर्थ मण्डल में २३ मन्त्र छोड़		

नोधा, एकद्यू, उशना ८ वें मण्डल में।

कक्षीवान् गोतम, नोधा, उचथ, उशना ९ वें मण्डल में।

गोतम, अङ्गिरस्, अंहोमुक् १० वें मण्डल में २०८ २०८

मूर्धन्वान्, घोषा, शबर

सुकीर्ति, सुहस्त्य, मन्त्रों का योग- १४७५

इस प्रकार ५२ गोतम ऋषियों में से १८ ऋषियों (मन्त्र द्रष्टा ऋषियों) ने ऋग्वेद के १४७५ मन्त्रों का दर्शन किया है। ३४ ऋषि यज्ञप्रवर्तक हैं, जो आचार्य हैं, यजुर्वेद के यज्ञों के प्रवर्तक हैं। गोतमों की सामवेद की १००० शाखाओं में एक गौतमी शाखा की गौतमी संहिता है। सामगान में "**गोतमस्य पर्कः**" उद्धृत होता है। सामवेद की संहिताओं में १८७५ (मन्त्र या ऋचायें) हैं जो साम के नाम से व्यवहृत होती है।

अथर्ववेद – ऋग्वेद के अङ्गिरा ऋषि जो गोतमों के मूल ऋषि कहे जाते हैं, दशम मण्डल में उनकी केवल ६ ऋचायें हैं। पर पुराणों में वही अङ्गिरा अथर्वा के नाम से अभिहित होकर अथर्वाङ्गिरस नाम से प्रसिद्ध होकर अथर्ववेद के ५९८७ मन्त्रों के द्रष्टा कहे जाते हैं।

ब्राह्मण साहित्य – शतपथ ब्राह्मण में राहूगण गोतम का तथा आरुणि का विशेष योगदान परिलक्षित होता है। शतपथ ब्राह्मण द्वारा प्रकट है कि राहूगण गोतम का पश्चिमी पञ्चाल से पूर्वी बिहार तक भारत में यज्ञों का प्रचार तथा संस्कृति-प्रसार का महत्त्वपूर्ण योगदान है। छान्दोग्य उपनिषत् में श्वेतकेतू का तथा आरुणि का तत्त्वज्ञान निहित है। गौतमी शिक्षा भी वेदाङ्ग-प्रचार का साधन है। गौतम पितृमेधसूत्र और गौतम धर्मसूत्र द्वारा धार्मिकता का पूर्ण रूपेण व्यवस्थापन गौतमों द्वारा हुआ है। अनुपलब्ध शाखीय ग्रन्थों का अस्तित्व, अन्य ग्रन्थों से प्रमाणित है।

५. वेदों के उपबृंहण तथा अन्य ग्रन्थों की धर्मशास्त्र स्मृतियों द्वारा शिक्षा, संस्कृति, आचार, नैतिक कर्तव्य, आर्थिक, सामाजिक, दार्शनिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक तथा वैज्ञानिक क्षेत्र में भारत को विभिन्न गोतमों की देन है। १४७५ मन्त्रों के अनुशीलन से, यज्ञों के अध्ययन से गौतम धर्म-सूत्र, गौतम स्मृति, पुराणों द्वारा इन विषयों पर प्रकाश प्रस्तुत होता है। गौतम संबंधी साहित्य द्वारा इस पञ्चम पराक्रम का स्फुटीकरण सम्भव हो सकता है जो समय तथा श्रम-साध्य है।

गौतम ऋषि की प्राचीनता पर विचार – पुराणादि ग्रन्थों में गोतम शब्द नहीं आता। गौतम नाम उपलब्ध होता है। इस नाम से अनेक गौतम जाने जाते हैं। दीर्घतमा गौतम, कक्षीवान् गौतम, शरद्वान् गौतम, कृप गौतम, शतानन्द गौतम, सत्यधृति गौतम, उतथ्य गौतम नोधा और वामदेव गौतम। अतः गौतम नाम गोत्र-संबन्धी है। मूल गौतम कौन था इसका विनिश्चय करना इस ग्रन्थ का विषय है। जो अत्यन्त प्राचीन होगा, वह मूल गौतम होगा। नोधा गौतम और वामदेव

गौतम तो मूल वैदिक गोतम, राहूगण के पुत्र हैं। उनकी प्राचीनता तो सन्दिग्ध नहीं ही है। वैदिक राहगूण गोतम पर न विचार कर पौराणिक गौतम पर ही विचार किया जा रहा है। गौतम - ब्रह्मा के मानस (मस्तिष्क-जात) पुत्र हैं वा. १०६.३८ पर उपर्युक्त पुराण-स्थलों से विदित है कि वे अङ्गिरा के पुत्र हैं। सर्वप्रथम गौतम (भा. ९.४.२३) अम्बरीष राजा का अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न कराते हैं। यह अम्बरीष (वि. ४.२.६) इक्ष्वाकु पुत्र नाभाग के पुत्र हैं। वैवस्वत मनु के इक्ष्वाकु। इससे प्रमाणित होता है कि गौतम वैवस्वत मन्वन्तर के प्रथम कृत (सत्य) युग के महर्षि सिद्ध होते हैं। अम्बरीष का सत्र सरस्वती नदी के तट पर सम्पन्न हुआ था। इससे यह भी प्रमाणित होता है कि वैदिक राहूगण गोतम में और इस अम्बरीष-याजक गौतम में इस घटना पर अभिन्नता तो नहीं, पर समकालिकता के कुछ लक्षण प्रतीत होते हैं कि राहूगण गोतम माथव विदेघ के पुरोहित रूप में उनके साथ सरस्वती नदी के तट पर भी याज्ञिक क्रिया-कलाप में विद्यमान थे। सामिधेनी मन्त्र के ऐतिहासिक आख्यान अम्बरीष के सरस्वती नदी के तट पर अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न कराने के औचित्य को पुष्ट करता है। इसलिये वैदिक और पौराणिक प्रमाणों से गोतम का आदि निवास सरस्वती तट पर प्रतीत हो रहा है। महर्षि गौतम ने इक्ष्वाकु १०० पुत्रों में से प्रधान तीन पुत्रों में से एक निमि का यज्ञ (वि.पु.) सम्पन्न कराया था। इस पौराणिक आख्यान को पुष्ट करने के लिये शतपथ ब्राह्मण का यह आख्यान के (राहूगण गोतम) सरस्वती नदी से सदानीरा के तट पर वैश्वानर का अनुसरण करते आये थे, पुष्ट करता है -

इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्

गौतमी गंगा का प्रादुर्भाव

महेश्वर की जटा से आई हुई धारा, कमण्डलु में स्थित हुई। वहाँ से दो आहर्ता होने के कारण गंगा का द्वैरूप्य है ब्रह्मपुराण-अध्याय ७४।

गंगा का एक अंश ब्राह्मण गौतम ने व्रत दान समाधि से शिव की गंगा से आहरण किया। द्वितीय अंश क्षत्रिय भगीरथ राजा ने तप और नियम से शंकर की आराधना कर गंगा से आहरण किया (७४.१.५)।

गौतम के आश्रम का वैशिष्ट्य वर्णन – ब्रह्मा ने नारद से तथा पार्वती ने विघ्नराज गणेश से जो तत्त्व कहा, उसका वर्णन किया जा रहा है। शङ्कर द्वारा गङ्गा को शिर पर स्थापित करने का रहस्य पार्वती ने विनायक, उसकी भगिनी जया और स्कन्द से उद्घाटन किया। उमा ने उस गङ्गा को पृथ्वी-तल पर लाने के लिये पुनः तपस्या करने का विचार किया। विघ्नराज ने जया और स्कन्द से मन्त्रणा की कि पिता जिस तरह गङ्गा का त्याग करेंगे, वैसा किया जायेगा। उसी समय २४ वर्ष की अनावृष्टि हुई और समस्त जंगम-स्थावर के लिये भयावह समय आया। पर उस समय गौतम आश्रम को छोड़कर जो देवयजन गिरि पर किया था, वही मेरे नाम से ब्रह्मगिरि प्रसिद्ध हुआ। उस भयावह अनावृष्टि से गौतम का आश्रम अछूता रहा। गौतम ने वहाँ भारत के समस्त जनों को, ऋषियों को अन्न उत्पन्न कर भोजन कराया। उनके पास ऐसा विज्ञान था कि प्रातः वे अन्न बोते थे और सायङ्काल काट लेते थे। आत तक के भारतीय इतिहास में ऐसा एक ऋषि या व्यक्ति नहीं हुआ जो लगातार २४ वर्ष की अनावृष्टि में भारत की जनसंख्या को खिला सके। गौतम ने ऐसा जनहित का कार्य कर लोक में समस्त ऋषियों में श्रेष्ठ महर्षि की उपाधि को सार्थक किया। आज कल पूरे विश्व में किसी ऐसी कृषि-पद्धति को किसी वैज्ञानिक ने जन्म नहीं दिया है। इस एक दिन की अवधि में फसल पकने के विषय पर भारत में अनुसन्धान अपेक्षित है।

ब्रह्मा ने कहा उस समस्त कामनाओं को देने वाले पुण्य आश्रम को छोड़कर शेष जङ्गम और स्थावर की रचना-हेतु मैंने देवयजन पर्वत पर यज्ञ किया जो मेरे नाम से ब्रह्मगिरि ख्यात हुआ। उस देवयजन और ब्रह्मगिरि पर्वत पर आश्रित श्रेष्ठ पर्वत पर गौतम का आश्रम है। उस आश्रम में आधि, व्याधि, दुर्भिक्ष, अवर्षण, भय, शोक, दरिद्रता, कदापि नहीं सुनी जाती है। उस आश्रम के बिना अन्यत्र हवि देने वाला, कव्य पितरों को देने वाला दाता, होता तथा पूजक नहीं था। जब गौतम विप्रों को दान और हवन करते हैं तो स्वर्ग में देवताओं को आप्यायन (पुष्टि, वर्धन, संभरण, संतुष्टि) होता है। देवलोक में या मर्त्य लोक में गौतम मुनि ही होता (हवन करने वाला) दाता और भोक्ता हैं ऐसा सभी लोग जानते हैं। यह सुनकर अनेक आश्रमों के निवासी अनेक तपस्वी गौतम आश्रम को पूछते चले आ रहे हैं। उस आश्रम में आने वाले समस्त मुनियों के शिष्य के समान, पुत्र के समान भक्तिपूर्वक पिता के समान पोषक हुए। गौतम ने जिस की जो अभिलाषा थी तदनुरूप यथायोग्य यथाक्रम यथानुरूप सभी की शुश्रूषा की। लोकमातृ रूप ओषधियाँ, अन्न आदि सभी गौतम की आज्ञा में रहते थे। गौतम ने पुनः ब्रह्मा, विष्णु महेश्वर की आराधना की। उसी समय ओषधियाँ (फसल) जम जाती हैं और उसी समय काट ली जाती हैं। गौतम के तपोबल से उसी समय बोई जाती है और उसी समय तैयार हो जाती हैं –

आज़्या गौतमस्यासन्नोषध्यो लोकमातरः।३४
जायन्ते च तदौषध्यो लूयन्ते च तदैव हि।
संपत्स्यन्ते तदोप्यन्ते गौतमस्य तपोबलात्॥३५॥
सर्वाः समृद्धयस्तस्य संसिध्यन्ते मनोगताः॥ ३६॥

आये हुए मुनियों के प्रति गौतम नम्र होकर कहते हैं – मैं पुत्रवत्, शिष्यवत् और दासभाव से सेवक रूप से आप की क्या सेवा करुँ? उन्होंने बहुत संवत्सरों तक पिता के रूप में आप सब का पालन किया। इस प्रकार सभी मुनि जन के निवास से तीन लोकों में गौतम की ख्याति हो गई। तब विनायक ने अपनी माता, भाई और जया से

कहा – हे मातः देवों के सदन में, गौतम द्विज के बारे में चर्चा होती है। गान होता है कि देवताओं के द्वारा भी जो कार्य साध्य नहीं है, गौतम ने उसे कर दिया है। मैंने ब्राह्मण के तपोबल को सुना है। वह विप्र शङ्कर की जटा में आई, समाई वे गङ्गा को उस स्थान से विचलित कर सकते हैं। तपस्या से या अन्य विधि से त्रिलोचन की पूजा कर वही पितृप्रिया जटा में स्थित गङ्गा को, वहाँ से हटा सकते हैं। उस प्रसङ्ग में ऐसी नीति निर्धारित की जाये जिससे वह तेजस्वी विप्र गङ्गा जी की याचना करे तो वह गङ्गा शिर से उतर सकती है। ऐसा माता से कह भाई स्कन्द और जया के साथ ब्रह्मसूत्रधारी और कृश शरीर वाले गौतम के पास गये। बहुत दिन रहने पर विघ्नराज ने ब्राह्मणों को अपने अपने आश्रमों में जाने के लिये कहा। गौतम ने उनसे निवेदन किया – मुझे शुश्रूषा का अवसर दीजिये और यहाँ रहिए। विघ्नराज की यह कुटिल नीति थी कि जया गोरूप धारण कर उनके आश्रम में शालि अन्न खाये और विनाश करे। प्रहार करने पर अथवा हुंकार करने पर वह चुपचाप भूमि पर गिर जाये और दीन शब्दोच्चारण कर न मरे न जीए। गौतम विप्र ने शालि अन्न गौ के खाने पर तृण से निवारण किया। गौ दीन पुकार करती हुई भूमि पर गिर गई। उसके गिरने पर महान् हाहाकार हुआ। विघ्नराज की कुटिल नीति के समर्थक ब्राह्मणों ने यह कहकर उस आश्रम से जाने की इच्छा प्रकट की। विप्रों के चलने पर वज्राहत के समान गौतम ऋषि ब्राह्मणों के समक्ष गिर गये। ब्राह्मणों ने गिरी हुई गौ का समाचार जानकर कहा – अब आप के आश्रम में हम तपोधन नहीं रहेंगे। गौतम ने विप्रों से प्रार्थना की कि आप मुझे पवित्र करें। ब्राह्मणोंसहित विघ्नराज ने कहा – यह गौ न मरी है न जीवित है। इसकी निष्कृति करनी है। गौतम के द्वारा पूछने पर विघ्नराज ने कहा – शंकर की प्रार्थना कर गङ्गा लाइये। उसके जल से सिञ्चित करें तो उठ जायेगी। इसके लिये गौतम ने देव-कार्य के लिये, लोकोपकार-हेतु शङ्कर तथा उमाप्रीत्यर्थ गङ्गा का आनयन ठीक समझा।

निष्कर्ष – गौतम द्वारा २४ वर्षों से अधिक ब्राह्मणों और मुनियों की शुश्रूषा करने उन्हें घोर सङ्कट में ला दिया। विघ्नराज की कुटिल नीति सफल हो गई। विघ्नराज ने जया से यह नाटक रचने को कहा कि तुम यज्ञशाला में या आश्रम में गिर जाना और न मरना न जीना। वस्तुतः यह छल ऋषि को तत्काल नहीं ज्ञात हुआ। समाधि द्वारा ध्यान लगाने पर सब ज्ञात हुआ। पर पूर्व में गङ्गा लाने का वचन दे दिया था। जिसने भारत के समस्त मुनियों का ब्राह्मणों का अन्य जन का भी अवर्षण में पालन-पोषण किया। वृष्टि होने पर सभी एक लाञ्छन लगाकर चले गये। तथापि ब्रह्मसूत्रधर कृश गौतम ने शङ्कर का स्तवन कर उन्हें अनुकूल कर गोदावरी नदी लाकर उनके किनारे बहुत से तीर्थों की स्थापना कर भारत के दक्षिण भू-भाग को हरा-भरा किया और अपने आश्रम को तो अवर्षण के समय भी शस्य-श्यामल बना समस्त लोगों की रक्षा की। इस रूप में महर्षि गौतम उस समय प्राण दाता और अन्न दाता प्रमाणित होते हैं जो सृष्टि के अन्तर्गत किसी एक व्यक्ति के वश की बात नहीं थी।

स्कन्दपुराण प्रथम भाग में कहा गया है –

अक्षपादो महायोगी गौतमाख्योऽभवन्मुनिः।
गोदावरी समानेता अहल्यायाः पतिः प्रभुः।। ५।।

महायोगी अक्षपाद गौतम नामक मुनि हुए। जो गोदावरी नदी को लाने वाले हैं तथा अहल्या के पति हैं।

गौतमेश्वर तीर्थ – गौतम ने योग-संसाधन करते हुए महान् तप किया। योग-सिद्धि प्राप्त कर उन्होंने गौतमेश्वर नामक शिवलिङ्ग की स्थापना गोदावरी नदी के तट पर की। युधिष्ठिर के सभा-भवन में प्रवेश के समय गौतम उपस्थित थे (महा. २.४.१७)। महर्षि गौतम के पुत्र का नाम शरद्वान् गौतम था (महा. १.१२९.२)। शङ्कर ने गौतम को दुर्गा-कवच दिया। गौतम शिव-तुल्य हुए (ब्रह्मवैवर्त ३९.४.६)। कृष्ण

के नामकरण के समय गौतम उपस्थित थे (ब्र. वै. भाग २, अ. १३)।

इस प्रकार गौतम महर्षि का अनिन्द्य चरित सर्वत्र प्रेरणादायक प्रमाणित होता है।

गौतम धर्मसूत्र – यह धर्मसूत्र बौधायन और वसिष्ठ धर्मसूत्रों से प्राचीन है। मनुस्मृति (३.१६) में गौतम का उल्लेख किया गया है। उन्हें उतथ्य का पुत्र कहा गया है। याज्ञवल्क्य स्मृति (१.५) में धर्मशास्त्रकारों में उनका नाम है –

पराशरव्यासशंखलिखिता दक्षगौतमौ

अपरार्क ने भविष्य पुराण से यह श्लोक उद्धृत किया है।

प्रतिषेधः सुरापाने मद्यस्य च नराधिप।
द्विजोत्तमानामेवोक्तः सततं गौतमादिभिः॥

वनमाला भवालकर ने गौतमधर्म सूत्र का काल ६०० ई.पू. लिखा है। भारतीय परम्परा के अनुसार गौतम शुक्राचार्य उशना के पौत्र अथवा प्रपौत्र थे और उतथ्य के पुत्र थे।

द्रोण को युद्धविरत करने के लिये आये हुए ऋषियों में एक अङ्गिरा भी थे (द्रोण पर्व १९० अ. ३३)।

ब्रह्मवैवर्त पुराण (भाग १, अ. ८) के अनुसार ब्रह्मा के मुख से अङ्गिरा हुए, अधर से प्रचेता हुए (२८. अ. ९.) और प्रचेता के मन से गौतम हुए –

प्रचेतसोऽपि मनसो गौतमश्च बभूव ह॥

अङ्गिरा के ३ पुत्र हुए बृहस्पति, उतथ्य और शम्बर॥ २॥ (अध्याय १०)

पौराणिक परिच्छेद सूची

५२ वेदोक्त गोतम ऋषियों में से पुराण, महाभारत तथा रामायण में उपलब्ध १८ गोतम ऋषियों का परिचय

परिच्छेद नाम	ऋषि नाम
सप्तम परिच्छेद	१. गौतम
अष्टम परिच्छेद	२. अहल्या
नवम परिच्छेद	३. अङ्गिरा
दशम परिच्छेद	४. वामदेव
	५. बृहदुक्थ
	६. असिज
	७. उशिज
	८. दीर्घतमा गौतम
	९. कक्षीवान्
	१०. वाजश्रवा
	११. बाभ्रव्य
	१२. उद्दालक आरुणि
एकादश परिच्छेद	१३. श्वेतकेतु
	१४ अरुण
	१५ उतथ्य
	१६ शरद्वान्
	१७ शतानन्द
	१८ उशना

सप्तम परिच्छेद

गौतम महर्षि

(पुराण, इतिहास, रामायणादि ग्रन्थों में (वेद प्रोक्त) गोतम गोत्रीय ५२ मन्त्रद्रष्टा ऋषियों तथा आचार्यों का महत्त्व)

मूल गौतम ऋषि – वेदों में आदि मूल ऋषि (राहूगण) गोतम हैं। पर पुराणों में गोतम नाम उपलब्ध नहीं होता। अतः पुराणों में गौतम ही आदि मूल ऋषि हैं। गौतम वंश में उत्पन्न होने वाले ऋषियों के लिए उपाधि संबंधी या गोत्र संबंधी नाम भी गौतम के रूप में उपलब्ध होता है। इस प्रकार के नामों में शरद्वान् गौतम, दीर्घतमा गौतम तथा कक्षीवान् एवं कृप आदि के नाम भी विचारणीय हैं। मूल गौतम विनिश्चय कर परिचय देना इस ग्रन्थ का प्रमुख विषय है। समस्त गौतमों में जो अतिप्राचीन होगा, वही मूल गोतम होगा।

गौतम के माता पिता –

१. ब्रह्मा के भृगु, अङ्गिरा आदि मानस-पुत्रों में गौतम एक मानस पुत्र थे (म. १७०.२७)।

२. ब्रह्मा ने गया में यज्ञ करने हेतु जिन मानस ऋत्विजों की सृष्टि की, गौतम उनमें से एक थे (वा. १०६.३८)। इन उपर्युक्त दो प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि गौतम के पिता ब्रह्मा थे।

३. अङ्गिरस् की भार्या सुरूपा के पुत्र गौतम हुए (म. १९५.४)। वायु पुराण (६५.१००) से विदित होता है कि अङ्गिरस् की भार्या स्वराट् के गौतम पुत्र उत्पन्न हुए। एक अन्य स्थल (६५.९७) से स्पष्ट होता है कि वे अङ्गिरस् वंश में उत्पन्न हुए। ब्रह्माण्डपुराण (३-१.

१०१) से भी यही प्रकट होता है कि अङ्गिरस् (जिनका अथर्वा दूसरा नाम था) की पत्नी स्वराट् ने गौतम को उत्पन्न किया। इन प्रमाणों से यह निरूपित होता है कि पिता का नाम अङ्गिरा (अथर्वा) था। यद्यपि मत्स्य पु॰ के अनुसार माता का नाम सुरूपा है। तथापि वायु और ब्रह्माण्ड पुराण के अनुसार माता का नाम स्वराट् है क्योंकि इनके अनुसार अङ्गिरस् की तीन भार्याएँ थीं – सुरूपा, स्वराट् और पथ्या। अन्य पुराणों के अनुसार अतिरिक्त ४ भार्याएँ और थीं – स्मृति, श्रद्धा, स्वधा तथा सती। अतः प्रमाणित होता है कि इनकी माता का नाम स्वराट् था। अङ्गिरा-परिचय में इसका सविस्तर वर्णन है।

सबसे प्राचीन गौतम - (४) सर्वप्रथम गौतम राजा अम्बरीष का अश्वमेध यज्ञ कराते हुए सरस्वती नदी के तट पर दृष्टिगोचर होते हैं। यह अम्बरीष राजा वैवस्वत मन्वन्तर के प्रारम्भिक (अर्थात् संभवतः प्रथम सत्य) युग में उत्पन्न हुए थे। विवस्वान् (सूर्य) के पुत्र वैवस्वत मनु। मनु के इक्ष्वाकु आदि १० पुत्रों में एक नाभाग थे। नाभाग के पुत्र अम्बरीष हुए (वि. ४-१.७, २.५-६) अर्थात् वैवस्वत मनु के चतुर्थ पुरुष (चौथी पीढ़ी) में अम्बरीष हुए। भा. (९.४.१ तथा १३) के अनुसार नभग के नाभाग पुत्र तथा उनसे अम्बरीष हुए। राजा अम्बरीष महाभागवत थे। उन्होंने अपने यज्ञ में गौतम का आह्वान सदस्य रूप में किया था।

५. इक्ष्वाकु के १० या १०० पुत्रों में से तीन प्रधान पुत्रों में निमि एक था। निमि ने अपना सहस्रसंवत्सर सत्र गौतम द्वारा संपन्न कराया था (वि. ४.५.६-८)। निमि विदेह हुए और उनके शरीर-मंथन से जनक (मिथि) उत्पन्न हुए। यह जनक मूल जनक है। इनकी २१ वीं पीढ़ी में जो सीरध्वज जनक हुए, उनकी पुत्री सीता थी। अतः यह स्पष्ट है कि सीता के पिता जनक (सीरध्वज) से २१ पीढ़ी पहले निमि थे, जिनका यज्ञ गौतम ने संपन्न कराया था।

अम्बरीष और निमि के यज्ञों में एक ही गौतम का यज्ञ कराना सिद्ध है। अन्तर केवल इतना है कि अंबरीष का यज्ञ सरस्वती नदी के तट पर संपन्न हुआ था और निमि का जयन्तनगर बड़ी गण्डकी

(नारायणी) सदानीरा के पास। जयन्तनगर के पास ही गोतम का आश्रम था। मिथि से मिथिला हुई। यह निष्कर्ष सत्य इसलिए माना जा सकता है कि वेदप्रोक्त रहूगण का पुत्र गोतम सरस्वती नदी के तट पर माथव विदेघ के पुरोहित थे। वैश्वानर के प्रकट होने पर उनका अनुगमन करते हुए यज्ञ-प्रसार रूप में माथव विदेघ और गोतम सदानीरा (गण्डकी) नदी तक पहुंचे। वैश्वानर के निर्देशानुसार माथव विदेह नदी के पूर्व भाग में राजा हुए और गोतम पुरोहित हुए। वैदिक नाम माथव विदेघ से पौराणिक नाम निमि विदेह मिथि में कुछ समरूपता देखी जा सकती है। अतः सम्भव है वैदिक राहूगण गोतम ही पौराणिक गौतम नाम से अभिहित हो गये हों। इस सम्बन्ध में मूल आख्यान शतपथ ब्राह्मण (१.४.१.१०-१९) तथा विष्णु पुराण (४, ५. १.३४) में द्रष्टव्य और मननीय है।

६. वैवस्वत मन्वन्तर के सप्तर्षियों में गौतम एक थे (भा. ८. १३.५, म. ९.२७, वि. ३,१.३२)।

७. भगवान् परशुराम के अश्वमेध में गौतम ऋषि उद्गाता का कार्य कर रहे थे (ब्र. ३, ४७,४८)। श्री परशुराम भृगु से छठी पीढ़ी में थे और अङ्गिरा से दूसरी पीढ़ी में गौतम थे पर वैदिक प्रमाणों से गोतम तीसरी पीढ़ी में थे (ब्र. ३.७३.९०)। इस के अनुसार परशुराम जी १९ वें चतुर्युग के त्रेता युग में आविर्भूत हुए थे और श्रीराम २४ वें चतुर्युग के त्रेता युग में। यद्यपि परशुराम छठी पीढ़ी (भृगु से) और अङ्गिरा से गोतम तीसरी पीढ़ी की समकालिकता सन्दिग्धता से रिक्त नहीं है। तथापि ऋषि के दीर्घजीवन के सम्बन्ध में अनेक प्रमाण उपलब्ध होते हैं। केवल संवत्सरप्रवर्तक दीर्घतमा गौतम दशम युग में जीर्ण (वृद्ध) हुआ था। यद्यपि गोतम गोत्रीय मन्त्रद्रष्टा ऋषि ऋग्वेद के १४७५ ऋचाओं (मन्त्रों) के द्रष्टा हैं तथापि गोतम की सामवेद संहिता गौतमी संहिता है।

८. गोतम के आश्रम के पास इक्ष्वाकु पुत्र निमि ने जयन्त नगर बसाया था। उससे प्रकट है कि गौतम का आश्रम जयन्त नगर के निकट था (ब्र. ३, ६४.२ वायु उ. २७.२ समान)।

९. अङ्गिरस् के श्रेष्ठ वंश में गौतम नाम के योगवित् हैं। उनसे गौतम नाम का पुण्यवन होगा। उस समय ब्रह्मा के ४ पुत्र होंगे – अत्रि, उग्रतपा, श्रावण तथा सविष्टक। गौतम अवतार १४ वें द्वापर युग के व्यास सुरक्षण के समय हुआ था (वा. पु. २३.१५३)।

१०. गौतम की पत्नी अहल्या – यह अहल्या पुरु वंश के मुद्गल भार्म्यश्व की पुत्री थी। इस संबन्ध में अधिक विश्लेषण अन्य पुराणों के प्रमाणों के साथ अन्यत्र किया जायेगा (भा.९.२१.३४-३८)। गौतम से अहल्या के पुत्र शतानंद थे। उनके पुत्र सत्यधृति, उनके पुत्र शरद्वान्, उनके पुत्र कृप और पुत्री कृपी (द्रोणाचार्य की पत्नी) हुई।

११. महर्षि गौतम के पुत्र या वंश में शरद्वान् गौतम थे (महाभारत १.१२९.२.६७)।

१२. क्रुद्ध धर्मज्ञ गौतम ने इन्द्र के वृषणसहित शिश्न को पृथ्वी पर गिरा दिया (ब्र. २, २७.२३)। यह कथन असङ्गत और वेदविरुद्ध है। गौतम और अहल्या संबंधी जो मिथ्या प्रलाप पुराणों में मिलता है, वह सर्वथा निराधार है। तथ्य यह है कि अहल्या रात को कहते हैं **"अहनि या लीयते"** अर्थात् जो दिन में नष्ट रहती है। गौतम गो (किरण) उत्तम अर्थात् गोत्तम चन्द्रमा को कहते हैं। इन्द्र सूर्य को कहते हैं। "इन्द्रो अहल्यायै जारः" इस वैदिक वाक्य का अर्थ है बारह सूर्यों (आदित्यों) में जो इन्द्र भी सूर्य है वह सूर्य अहल्या अर्थात् रात्रि का जार अर्थात् वृद्ध करने वाला, समाप्त करने वाला है। स्पष्ट है कि सूर्य प्रतिदिन रात्रि (अहल्या) को नष्ट कर रहा है। यह प्रतिदिन का व्यापार है। वेद के अर्थ से शून्य लोगों ने अहल्या के संबंध में इसे एक अपवाद माना। यह नितरां असत्य है। विशेष विवेचन अहल्या के प्रकरण में किया जायेगा। इस संबन्ध में दयानन्द की ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, पुराण-दिग्दर्शन (माधवाचार्य कृत), पुराण विमर्श – (बलदेव उपाध्याय) अवलोकनीय है। अहल्या पञ्च कन्याओं में एक कन्या है।

अहल्या द्रौपदी तारा कुन्ती मन्दोदरी तथा।
पञ्चकन्या स्मरेन्नित्यं महापातकनाशनम्॥

यदि उपर्युक्त घटना सत्य होती तो स्वयं गोतम और उनके पुत्र नोधा, वामदेव तथा अन्य वंशज ऐसे इन्द्र की स्तुति कदापि नहीं करते। वैदिक अर्थ को बिना समझे लोगों ने पुराणों में इस तरह की अनर्गल बातें जोड़ दी हैं। वे अंश पुराणों में प्रक्षेप हैं जो निकाल देने योग्य हैं। एक बार दुर्वासा ने इन्द्र से कहा था कि गौतम आदि ऋषियों ने तुझमें व्यर्थ ही गर्व आरोपित कर दिया है (वि.१, ९.२१)।

१३. पूषा आदित्य के साथ गौतम तपः (माघ) मास में सूर्य मण्डल में अर्थात् सूर्य रथ पर विराजित रहते हैं। वे सूर्य विभूति हैं (भा. १२.११.३९)।

१४. क्रमशः आश्विन तथा कार्तिक मास में पर्जन्य तथा पूषा आदित्य के साथ गौतम भारद्वाज के साथ विराजित रहते हैं (ब्र. २, २३. १२ तथा म. १२५.१३ समान)।

१५. पूषा आदित्य के साथ गौतम आश्विन मास में विराजित रहते हैं (वि. २, १०.११)।

१६. गौतम बीसवें द्वापर युग के वेदव्यास थे जो भरद्वाज के बाद हुए (ब्र. २, ३५.१२१ वि. ३, ३.१६ समान)।

१७. **गौतम योगी** – भगवान शङ्कर के अवतार – २४ वें द्वापर में जब सुरक्षण नाम के व्यास थे उस समय भगवान शङ्कर अङ्गिरस वंश में श्रेष्ठ गौतम नाम के योगविद् के रूप में प्रादुर्भूत हुए। ऐसा शंकर ने ब्रह्मा से समस्त अपने अवतारों का वर्णन करते हुए कहा (वा.पु. ५.२३.१५१-१५४)।

१८. अगस्त्य ऋषि एक बार अनन्तदर्शन की इच्छा से पाताल गये। वहाँ गौतम आरुणि आदि ऋषियों को अनन्त (शेष) की उपासना करते देखा (ब्र. ३, ३६.५)।

१९. गौतम ने वायु पुराण भरद्वाज से सुना और उसे निर्यन्तर को सुनाया (वा. १०३.६३)। इसी प्रकार ब्रह्माण्ड पुराण को गौतम ने भरद्राज से सुना और उसे नियन्तर को सुनाया (ब्र. ४, ४.६३)।

२०. मय दानव के उपद्रव करने पर देवों के साथ ब्रह्मा ने शङ्कर को युद्ध के लिए तैयार किया। शङ्कर रथ पर आसीन हुए। उस समय गौतम ने भगवान् शङ्कर की स्तुति की थी (म. १३२.६८)।

२१. नर्मदा-माहात्म्य में शुक्ल तीर्थ के वर्णन के प्रसङ्ग में मार्कण्डेय द्वारा परमतीर्थ पूछने पर ईश्वर ने शुक्ल तीर्थ का माहात्म्य बताते हुए गौतम आदि धर्मकाङ्क्षी ऋषियों के नाम उद्धृत किये है (म. १९१.११)।

२२. हिरण्यनाभ कौशल्य ने ५०० साम संहिताएँ शिष्यों को पढ़ाई थीं। उनका एक शिष्य कृत नाम का था। उसने २४ संहिताओं का प्रवचन शिष्यों को किया। उन शिष्यों में गौतम एक थे। इस प्रकार गौतम साम संहिता के प्रवक्ता थे (ब्र. २, ३५.४९-५५)।

२३. कृष्ण राम (बलराम) के दर्शन-हेतु सूर्यग्रहण में स्यमन्तकपञ्चक तीर्थ में उपस्थित ऋषियों में च्यवन, शतानन्द, गौतम, परशुराम, अङ्गिरा, वामदेव आदि थे (भा. १०.८४. २-५)।

२४. युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में कृष्ण द्वारा अनुमोदित ऋषियों में वामदेव, अथर्वा, च्यवन, परशुराम, कृप के साथ गौतम भी वृत हुए (भा. १०.७४.७-१०)।

२५. अक्रूर ने हस्तिनापुर में जाकर गौतमसहित भारद्वाज को देखा (भा. १०.४९.२)।

२६. विनशन स्थान पर भीष्म के भूमि पर गिरने पर अनेक ऋषियों में कक्षीवान् गौतम, अङ्गिरा आदि देखने आये थे (भा. १.९.७)।

२७. हस्तिनापुर से कृष्ण के जाते समय अनेक व्यक्तियों में शरद्वान्, अङ्गिरा, उतथ्य, मेधातिथि और गौतम उपस्थित थे जो कृष्ण का विरह नहीं सह सके।

२८. गङ्गा नदी में परीक्षित् के प्रायोपवेश (प्राणत्याग) के समय अनेक ऋषि उपस्थित हुए – शरद्वान, अङ्गिरा, उतथ्य, मेधातिथि, गौतम आदि (भा. १.१९. ९-११)।

तथ्य – उपर्युक्त लेख में अनेक गौतमों के नाम उपलब्ध हो रहे हैं। शतानन्द, सत्यधृति, शरद्वान्, कृप, उतथ्य, वामदेव, कक्षीवान्, दीर्घतमा गौतम के साथ अङ्गिरा भी उपस्थित होते हैं। इन सब में अहल्या के पति गौतम ही मूल गौतम हो सकते हैं। शरद्वान् को तीन पुराणों में अहल्या का पति कहा गया है। यह पुराणों के गलत संस्करण के कारण है। वस्तुतः भागवत पुराण का पाठ अति विश्वसनीय है और उसके अनुसार गौतम ही मूल गौतम हैं। इस प्रसङ्ग में एक रहस्यमय बात यह है कि जो मूल गौतम अम्बरीष और निमि के समय यज्ञ में सम्मिलित थे वे ही परीक्षित के प्रायोपवेश तक उपस्थित हो रहे हैं। उनमें जिन गौतमों को मूल गौतम सिद्ध करने का प्रयास करेंगे वे गौतम भी उन स्थानों पर उपस्थित होते हैं – जैसे शरद्वान् और उतथ्य। इनके अतिरिक्त अङ्गिरा भी उपस्थित होते हैं। अत: एक ही ऋषि गौतम निमि से परीक्षित् तक आ रहा है। गौतम के अतिरिक्त अन्य गौतमगोत्रीय ऋषि अपने नाम से व्यवहृत होते हैं। गौतम केवल गौतम नाम से प्रसिद्ध हैं। शतानन्द, सत्यधृति और कृप को मूल गौतम नहीं कह सकते। क्योंकि शतानन्द और कृप के साथ गौतम क्रमशः स्यमन्तपञ्चक में तथा राजसूय यज्ञ में उपस्थित होते हैं।

उतथ्य – स्वयं गौतम नहीं है। वे भी स्वराट् में उत्पन्न हैं और परीक्षित के प्रायोपवेश में गौतम के साथ उपस्थित होते हैं। वामदेव भी मूल गौतम नहीं हो सकते। वेद में वे गोतमपुत्र हैं। यहाँ स्वराट् से उत्पन्न हैं। युधिष्ठिर के राजसूय में वामदेव भी गौतम के साथ उपस्थित होते हैं। दीर्घतमा और कक्षीवान् भी मूल गौतम नहीं हो सकते क्योंकि ये दोनों क्रमशः उशिज के पुत्र और पौत्र हैं। कक्षीवान् के साथ गौतम भी उपलब्ध होते हैं, भीष्म के भूमि पर गिरने पर।

दीर्घतमा – "गवाहृततमः सोऽथ गौतमः समपद्यत।" गौ के द्वारा नेत्र के अन्धकार को दूर करने के कारण, ज्योति प्राप्त करने से गौतम

हुए। यद्यपि दीर्घतमा, गौतम बन गया था तथापि वह उचथ का पुत्र था। अत: मूल गौतम नहीं है।

शरद्वान् गौतम और मूल गौतम – शरद्वान् मूल गौतम इसलिए नहीं हो सकते कि परीक्षित् के प्रायोपवेश में इनके साथ गौतम भी उपस्थित होते हैं। अत: ये भिन्न हैं। भागवत के अनुसार ये गौतम के प्रपौत्र तथा सत्यधृति के पुत्र हैं तथा कृप कृपी शरद्वान् की सन्तान हैं। अत: ये शरद्वान् मूल नहीं हो सकते। महाभारत में महर्षि गौतम के पुत्र शरद्वान् बताये गये हैं।

उतथ्य पुत्र शरद्वान् – ऊपर सत्यधृति के पुत्र शरद्वान् का उल्लेख किया गया। अब ये दूसरे शरद्वान् औतथ्य हैं। ये सप्तम वैवस्वत मन्वन्तर में, सप्तर्षियों में शरद्वान् गौतम औतथ्य एक बताये गये हैं (ब्र. २,३८.२८)। इस औतथ्य शरद्वान् को केवल ब्रह्माण्ड पुराण ने ही सप्तर्षियों में एक ऋषि बताया है। पर (भागवत ८.१३.५) मत्स्य ९. २७ वि. ३, १.३२ ये) तीनों पुराण गौतम को सप्तर्षियों में एक ऋषि मानते हैं।

निम्नलिखित प्रमाणों से शरद्वान् को मूल गौतम नहीं माना जा सकता :–

१. शरद्वान् का पिता उतथ्य है जो अङ्गिरा की भार्या स्वराट् से गौतम के साथ उत्पन्न हैं। अत: गौतम की उपस्थिति में औतथ्य गौतम को मूल गौतम नहीं मान सकते।

२. मूल गौतम और शरद्वान् गौतम में १ पीढ़ी है, उतथ पुत्र होने से।

३. शरद्वान् औतथ्य गौतम कहने से प्रतीत होता है कि वे गौतम गोत्रीय हैं।

४. भागवत के अनुसार शरद्वान् मूल गौतम के प्रपौत्र हैं।

५. गौतम योगी थे। शरद्वान् के सम्बन्ध में ऐसा प्रमाण उपलब्ध नहीं होता।

६. भागवत और महाभारत दोनों शरद्वान् को गौतम का वंशज मानते हैं।

७. महाभारत शरद्वान् की संतति कृप और कृपी भागवतमत जैसा ही मानता है।

८. परीक्षित् के प्रायोपवेश में शरद्वान् के अतिरिक्त गौतम उपस्थित थे। अतः शरद्वान् मूल गौतम नहीं है।

९. शरद्वान् को अहल्या का पति बताया गया है और मत्स्य, विष्णु तथा वायु में गौतम को। भागवत पुराण अध्ययन की परिपाटी में सुरक्षित रहा है। अतः वह मान्य है। अहल्या मूल गौतम की पत्नी थी, गौतमगोत्रीय किसी अन्य ऋषि की नहीं। अतः तीन पुराणों में अहल्या के पति के रूप में शरद्वान् को बताना भ्रमपूर्ण है।

१०. वैदिक गोतम (राहूगण) का पुत्र वामदेव जब कि शरद्वान् का पुत्र वामदेव सिद्ध नहीं होता। वेदों में गोतम जितना महत्त्वपूर्ण है, शरद्वान् उतना नहीं।

अन्य पुराणों में गौतम का स्वरूप
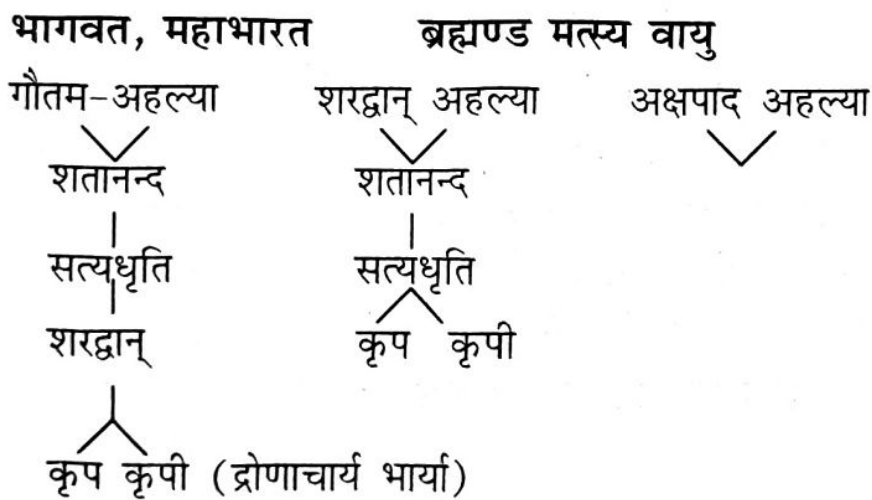
अतः उपर्युक्त तर्कों और पौराणिक प्रमाणों के आधार पर यह प्रमाणित हुआ कि गौतम उपाधिधारी जितने ऋषि हैं वे मूल गौतम नहीं है। केवल मूल गौतम वे ही हैं जो उपर्युक्त ऋषियों के साथ उपाधिरहित हैं।

वैदिक ऋषि राहूगण गोतम में और पौराणिक गौतम में कितने काल का अन्तर है इस पर विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है। प्रथम तो चारों वेद अस्तित्व में आये। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद तथा ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक, उपनिषत्, वेदाङ्ग, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष, तदनन्तर पुराणों की रचना हुई। दस विद्याओं में वेद और वेदाङ्ग हैं। चतुर्दश विद्याओं में पुराण, न्याय मीमांसा और धर्मशास्त्र हैं। वेद-वेदाङ्ग के अनन्तर ही पुराण संरचित हुए। वेदों की भाषा और पौराणिक भाषा में महान् अन्तर है। वेदों के संकलनकर्ता व्यास और पुराणकर्ता व्यास की एकता यद्यपि परम्परा से प्राप्त है तथापि भाषा की दृष्टि से महान् अन्तर है।

महाभारत में गौतम

गौतम – गोतम के वंशज, एकाधिक महर्षियों का नाम है। ये मृत प्रमद्वरा को देखने के लिये उपस्थित हुए (१.८.२५)। ये दीर्घतमा और प्रद्वेषी के ज्येष्ठ पुत्र थे (१.१०४.२४)। अपने भ्राताओं को साथ लेकर इन्होंने दीर्घतमस् को गङ्गा में फेंकवा दिया (१.१०४.३९)। अर्जुन के जन्म के समय उपस्थित सप्तर्षियों में एक यह भी थे (१.१२३.५१)। युधिष्ठिर के सभाभवन में प्रवेश करने के समय ये भी उपस्थित थे (२.४.१७)। इन्द्र की सभा में इनकी उपस्थिति (२.७.१८) और ब्रह्मा की सभा में इनकी उपस्थिति (२.११.१९) रही – काक्षीवतः पुत्रं गौतमस्य महात्मनः (२.१७.२२)। उन ऋषियों में एक यह भी थे जो युधिष्ठिर की प्रतीक्षा कर रहे थे (३.८५.११९)। एकत, द्वित और त्रित के पिता (१२.४७.१०) थे। उन ऋषियों में एक यह भी थे जो भीष्म को घेर कर खड़े हुए थे (६.४१.८१)।

अष्टम परिच्छेद

अहल्या

अहल्या के माता-पिता, कुल तथा देश - भर्म्यश्व के पाँच पुत्र हुए। वह पञ्चाल देश का था। मुद्गल भार्म्यश्व की मिथुन युग्म सन्तति हुई। पुरुष दिवोदास हुआ। कन्या अहल्या हुई जिसमें गौतम से शतानन्द हुए। शतानन्द के सत्यधृति पुत्र, सत्यधृति के शरद्वान्, उनका उर्वशी-दर्शन से शरस्तम्ब पर रेत का स्खलन। कृप और कृपी हुए, जिन्हें शन्तनु लाये (भागवत ९.२१.३१-३६)।

मत्स्य पु॰ (५०.३-१२) वाल्मीकि (९९.१९९-२०५) के समान वायुपुराण के अनुसार मुद्गल पुत्र इन्द्रसेन। इन्द्रसेन का बध्यश्व पुत्र। बध्यश्व पुत्र। बध्यश्व की युग्म सन्तति दिवोदास और अहल्या। अहल्या ने शरद्वान् के वंशधर को उत्पन्न किया। सभी शारद्वत गौतमान्वय कहे गये।

मत्स्य पु. (५०.३-१२) भद्राश्व के मुद्गल, उनके विन्ध्याश्व से मेनका में युग्म सन्तति – दिवोदास और अहल्या (विष्णु पु. ४, १९, ६२) मुद्गल बृहदश्व से दिवोदास अहल्या।

निष्कर्ष – भर्म्यश्व के वंशज भार्म्यश्व कहलाये। अतः भागवत में भार्म्यश्व, वायु में बध्यश्व, मत्स्य में विन्ध्याश्व, विष्णु में बृहदश्व इन सभी नामों के अन्त में अश्व शब्द है। प्रतीत होता है कि भार्म्यश्व शब्द ही अशुद्ध रूप में उन-उन पुराणों में है। प्रश्न यह है कि उस अहल्या का पति कौन है? मत्स्य और वायु पु॰ शारद्वान् को अहल्या का पति बताते हैं। भागवत पुराण और ब्रह्मपुराण गौतम को बताता है। यही विचारणीय है। इसके सम्बन्ध में गौतम-परिचय में विवेचन किया गया है।

अहल्या – वाल्मीकि रामायण में अहल्या की कथा पर समीक्षा की जा रही है। सातवलेकर के अनुसार इन्द्र ने अहल्या का धर्षण किया। क्या यह घटना ऐतिहासिक है। इस पर विचार किया जा रहा है। सर्वप्रथम अहल्या शब्द शतपथ ब्राह्मण में आया है।

"अहल्यायै जारेति" "तद्यानि एवास्य चरणानि तैरेवैनं एतत् प्रमुमोदयिष्यति।" अहल्या के लिये इन्द्र जार बना था। यह वाक्य इन्द्र के लिये प्रसन्नतादायक है (श.ब्रा. ३.३.४.१८ तै.आरण्यक १.१२)। अतः इस वाक्य का अर्थ कुछ दूसरा है। अहल्या शब्द तथा यह वाक्य दोनों मन्त्रभाग में नहीं हैं, श.ब्राह्मण में हैं। यह वचन षड्विंश ब्राह्मण तथा ताण्डय महाब्राह्मण में है –

अहल्यायै जारेति – अहल्याया ह मैत्रेय्या जार आस (षड्विंश १.१ तां.ब्रा. २६.१)।

कौशिक ब्राह्मणेति कौशिको ह स्मैनां ब्राह्मण उप न्येति गौतम ब्रुवाणेति। देवासुरा ह संयत्ता आसंस्तानन्तरेण गोतमः शश्राप, तमिन्द्र उपेत्योवाच इह नो भवान्स्तपसश्चरत्विति नाहमुत्सह इत्य थाहं भवतो रूपेण चराणीति यथा मन्यस इति स यत्तद् गोतमो वा ब्रुवाणश्चचार गोतम रूपेण वा तदेतदाह। जैमिनीय ब्राह्मण (२.७०) में भी है यह।

मैत्रैयी अहल्या – मित्र सूर्य की स्त्री या पुत्री उषा या रात्रि हैं रात्रि उषा सूर्य का रूपक पत्नी, पुत्री, बहिन, माता, पुत्र, जार आदि अनेक प्रकार से किया जाना संभवनीय है। यह सच्चा इतिहास है या रूपक? मन्त्र में अहल्या शब्द नहीं है। शतपथ में है। अतः वेद में केवल जार शब्दों के अर्थों पर विचार किया जा रहा है।

१. **"सन्धये जारम्"** (य.३०.९)। सन्धि कराने के लिये जार (वृद्ध मनुष्य) को नियुक्त करे।

२. जलों का जार-सूर्य (ऋ. १.४६.४) मेघों को क्षीण करने वाला।

३. अध्वर का जार, अग्नि (ऋ. १०.७.५.) यज्ञ की पूर्णता करने वाला।

४. शत्रु के किले जीतने वाला जार, इन्द्र (१०.१११.१०.) शत्रु को जीर्ण करने वाला।

५. जीर्ण (बुड्ढा) जार (ऋ. १०.१०६.७) जो थोड़े समय में मरने वाला है।

६. जार (सूर्य) (ऋ. १०.११.६) आयु की जीर्णता करने वाला (जॄ वयो हानौ)

७. जार (स्तुति के योग्य) इन्द्र (ऋ.१०.४२.३) (जॄ स्तुतौ)।

८. उषाओं का जार सूर्य (ऋ. १.६९.१) (उषाओं का नाशकर्ता)।

९. जार पति की परिचर्या करने वाली स्त्री (ऋ. ७.७६.३)।

१०. बहिन का जार (सूर्य) (ऋ. ६.५५) (उषाओं का नाशकर्ता)।

११. कन्या का जार (ऋ. १.६६.४.) (विवाह करा के कन्या को पत्नी बनाने वाला)।

उक्त अर्थों में जार का अर्थ स्तुति करने योग्य, यह अर्थ आता है। इस अर्थ से कोई परिणाम नहीं निकल सका।

अहल्या का अर्थ –

१. "अहः लीयते यस्यां" दिन जिसमें लीन होता है। अर्थात् रात्रि या संध्या।

२.अहनि लीयमाना-दिन में जो लीन होती है। रात्रि अथवा प्रातः उषा।

उषा दिन में लीन होती है इसलिये वह अहल्या है (अहनि लीयमाना)। अहली-अहल्या-इसकी वयो-हानि करने वाला सूर्य है। इसलिये सूर्य ही उषा का जार है। उषा का पति अग्नि या चन्द्र है। यही गौतम है। उषा का जार सूर्य है। यह कथा रूपकालङ्कार से है। अहल्या कथा व पुराणों में जार कर्म के बारे में श.ब्रा. तथा षड्विंश ब्राह्मण को कुछ पता नहीं। अतः उषा और सूर्य रूपक ही है। एक

आलंकारिक इससे अधिक उसमें कुछ नहीं था। यह बात स्पष्ट है। ब्राह्मण ग्रन्थों के पश्चात् के काल में कवियों ने इस रूपक में व्यभिचार की कल्पना मिलाकर विविध प्रकार की कथायें रचीं। ऐसी कथा वाल्मीकि से ही प्रारम्भ हुई। मौखिक प्रचार को उन्होंने लेख-बद्ध किया। आगे नमक मिर्च लगाकर कवियों ने बढ़ा दी। अहल्या की उत्पत्ति – (हरि. १.३२.६९-७१ मत्स्य ५०, भागवत् ९.२१.३४ विष्णु ४.१९; ६१.२३) में है। मुद्गल – पुत्र दिवोदास और पुत्री अहल्या थी।

वाल्मीकि रामायण में अहल्या – वा. रा. बाल. (४८) में इन्द्र वृषण पात। लिङ्गपुराण (२९) के अनुसार गोतम ने इन्द्रवृषण काट गिराया। इन्द्र के लिए बकरे के वृषण – (वा.रा.बाल. ४९.८)। अहल्या की शुद्धि (वा.रा. बाल. ४९)। कम से कम वाल्मीकि को अहल्या का शिला होना और शिला से मानवी स्त्री बनने का पता नहीं था। अतः यह कवि-कल्पना पीछे की है अर्थात् आधुनिक गप्प है। वा.रा.उत्तर ३० में बालकाण्ड की कथा से भिन्नता है। अतः एक ही लेखक का रामायण नहीं है।

३. गणेश पुराण, अहल्या कथा (गणेश १.३०)।

४. ब्रह्मपुराण अहल्याकथा (२.१६, १-१२, १३-३२) अर्धप्रसूता की प्रदक्षिणा। ३२-३८, २९.४५, ४६-७१ में नदी बनना।

५. पद्मपुराण की अहल्या कथा – पद्म (५५.१-९, १०-३०, ३१-४३, ४४-५१) शुष्क शरीर बनना वर्णित है।

६. स्कन्द पुराण की अहल्या कथा - गौतम का तप करना अहल्या के लिए।

७. अध्यात्म रामायण (बाल ५) में शिला पर बैठ अद्भुत कथा।

८. आनन्द रामायण में अहल्या कथा – (सर्ग ३) नाविक ने कहा गृहिणी घर में है। दूसरी क्या होगी – चरण-प्रक्षालन के बाद बैठे।

शिला से स्त्री बनना और नौका से भी स्त्री-निर्माण होनेकी संभावना मानने तक अद्भुत रस की वृद्धि हुई है।

यह कथा सत्य या काल्पनिक?

अहल्या की कथा सत्यकथा नहीं है। यह बात अहल्या की कथा का मूल वेद मन्त्रों के देखने के प्रसङ्ग में, वेद मन्त्रों का विचार करने के समय कह दी गई है। कथा रूपकात्मक आलङ्कारिक होने की अवस्था में भी वह सामाजिक उपदेश दे सकती है। इसमें सन्देह नहीं है। उषा तथा रात्रि का सम्बन्ध, अग्नि सूर्य तथा इन्द्र के साथ है, यह पहले बताया गया है। निशापति चन्द्र उसके क्षीणत्व के कारण तपस्वी माना जाना स्वाभाविक है। उसका कृष्णपक्ष में क्षीण होना तप का द्योतक हो सकता है। इतनी सामग्री कवि के पास मिलने पर वह इस तरह की कथा की रचना क्यों न करेगा? एक बार कथा की रचना हुई तो उसमें नमक-मिर्च मिलाना और उस कथा की वृद्धि होना स्वाभाविक ही है अर्थात् आरम्भ में यह कथा सत्य कथा नहीं थी, केवल रूपकात्मक थी। रूपकात्मक मानकर ही उसकी वृद्धि हुई, यह सत्य है। अतः परीक्षण की कसौटी पर कसने से यह इन्द्र अहल्या प्रवर्णित अपवाद संबंधी, अपवादात्मक कथा ऐतिहासिक सिद्ध नहीं होती।

अहल्यायै जारः – अनेक वैदिक ग्रन्थों में उपलब्ध होता है। इन्द्र अहल्या का या मैत्रेयी अहल्या का जार (उपपति) कहा गया है। श्री कुमारिल भट्ट (सप्तम शती) ने अपने **"तन्त्र वार्तिक"** नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ में इस समस्या का समाधान बड़ी युक्तिमत्ता के साथ किया है। उन्होंने इस कथानक के रूपक का रहस्य समझाया है। उक्त ऐतिहासिक वेदगाथा सूर्य-रात्रि के दैनन्दिन व्यवहार की द्योतिका है। वेदगाथा का सूर्य-रात्रिपरक, रूपकप्राय अर्थ किया है। तदनुसार चन्द्रमा ही (उत्तमा गावो रश्मयो यस्य सः) गोतम है। रात्रि ही उसकी पत्नी या अहर्लीयते यस्यां सा – अहल्या है। दिन जिसमें लीन हो जाये ऐसी अर्थात् दिन को अपने में लीन करने वाली अहल्या का यह निरुक्तिगम्य अर्थ है। सूर्य ही परमैश्वर्य से सम्पन्न होने के हेतु इन्द्र है।

इन्द्र और सूर्य के ऐक्यबोधक वाक्य वैदिक साहित्य में बिखरे पड़े हैं। यथा –

"य एष सूर्यस्तपति, एष उ एव इन्द्र" – शतपथ (४.५.९.४) के अनुसार परम ऐश्वर्य सम्पन्न होने के कारण इन्द्र है। वह सूर्य रात को जीर्ण करने वाला है। अत एव वही जार कहा जाता है।

उक्त रूपक के समर्थन में प्रमाण – रात्रि को जीर्ण या परिसमाप्त कर देने वला अत एव कुमारिल (सप्तम शती) की सम्मति में चन्द्रमा की पत्नी रात्रि सूर्य के उदित होते ही जीर्ण होकर समाप्त हो जाती है। इसी लोक-व्यवहार की प्रतिदिन साक्षात्कृत घटना का वर्णन पूर्वोक्त वेदगाथा में किया गया है। कुमारिल से १५०० वर्ष पूर्व होने वाले यास्काचार्य ने भी इसी तात्पर्य की ओर संकेत किया है। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भी इस व्याख्या को प्रमाण मानकर ठीक ऐसी ही व्याख्या की है –

१. सहस्राक्षमतिपश्यं पुरस्तात् – अथर्व ११.२-१७

२. सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्व इत्यपि निगमो भवति सोऽपि गौरुच्यते। सर्वेऽपि रश्मयो गाव उच्यन्ते (निरुक्त २.२.२)

३. आदित्योऽपि जार उच्यते रात्रेर्जरयिता (निरुक्त ३.३.४)

४. ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृष्ठ ३००

आर्य समाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द का समर्थन – इन्द्रः सूर्यो य एष तपति –

भूमिस्थान् पदार्थान्प्रकाशयति अस्येन्द्रेति नाम परमैश्वर्यप्राप्ते – र्हेतुत्वात्। स अहल्याया जारोऽस्ति सा सोमस्य स्त्री तस्य गोतमेति नाम। गच्छतीति गौरतिशयेन गौरिति गोतमश्चन्द्रः। तयोः स्त्री पुरुषवत् सम्बन्धोऽस्ति...अत्र स सूर्य इन्द्रो रात्रेरहल्याया गोत्तमस्य चन्द्रस्य स्त्रिया जार उच्यते। कुतः अयं रात्रेर्जरयिता। जृष् वयो हानाविति धात्वर्थोऽभिप्रेतोऽस्ति। रात्रेरायुषो विनाशक इन्द्रः सूर्य एवेति मन्तव्यम्।

पुराणविमर्श – बलदेव उपाध्याय – अहल्यायै जार: – रूपक दृष्टि से देखने पर यह घटना दैनन्दिन घटना की प्रतीक मात्र है।

अहल्या – ब्रह्मपुराण (८७ अ.) में ब्रह्म द्वारा सृष्ट सर्वोत्तम कन्याओं में एक थी। ब्रह्मा ने उसके पालन-पोषण के लिये दैत्यों, देवों और मुनियों में कौन समर्थ है – ऐसा विचार किया। गुणों में ज्येष्ठ विप्र तपोयुक्त धीमान् सर्वलक्षणयुक्त वेदवेदाङ्गज्ञाता गौतम को महाप्राज्ञा अहल्या के पोषण के लिये दिया। युवावस्था होने तक इसका पालन कर इस साध्वी को मेरे पास लाना। निर्विकार गौतम ने उसे लाकर ब्रह्मा को समर्पित किया। उस कन्या को देखकर शक्र, अग्नि, वरुण, मुनि, साध्य, दानव, यक्ष, राक्षसों ने पृथक्पृथक् ब्रह्मा से उस कन्या के लिये याचना की। इन्द्र का विशेष आग्रह था। गौतम का माहात्म्य, गम्भीरता तथा धैर्य का स्मरण कर विस्मित ब्रह्मा ने गौतम को ही इसे देना चाहिये, अन्य को नहीं – ऐसा विचार किया। इस बाला ने समस्त लोगों की मति और धैर्य का मन्थन कर दिया है। इस कारण देवों ने और ऋषियों ने भी इसे अहल्या कहा है। देवताओं और ऋषियों के समक्ष उच्च स्वर में उद्घोषणा की – जो कोई पृथ्वी की सबसे पहले प्रदक्षिणा करके आ जायेगा उसे दी जायेगी। समस्त देवता प्रदक्षिणा करने चले गये। गौतम ने भी कुछ प्रयास किया। सुरभि (कामधेनु) की अर्धप्रसूता रूप में यह पृथ्वी है। ऐसा स्मरण कर प्रदक्षिणा की। महादेव के लिङ्ग की भी प्रदक्षिणा की। गौतम ने ब्रह्मा के पास जाकर कहा – देवताओं द्वारा पृथ्वी की एक प्रदक्षिणा भी नहीं हुई। मेरे द्वारा दो प्रदक्षिणा कर दी गई। ब्रह्मा ने ध्यानस्थ होकर देखा कि अर्धप्रसूता सुरभि सप्तद्वीप वाली मही (पृथ्वी) के समान है। "हे गौतम विप्रर्षे आप वह धर्म जानते हैं जो वेदों के द्वारा भी दुर्ज्ञेय है। लिङ्ग की भी प्रदक्षिणा करके वही फल प्राप्त होता है। इसलिये तुम्हारे धैर्य, ज्ञान और तपस्या से मैं संतुष्ट हूँ। अत: मैं इस लोकवर कन्या अहल्या को तुम्हें देता हूँ।" ब्रह्मगिरि पुण्य क्षेत्र भी दिया गया जहाँ गौतम ने दाम्पत्य जीवन व्यतीत किया।

इतिहास-पुराणों में गोतम ऋषियों का स्वरूप

मूलपरुष अङ्गिरा ऋषि का परिचय - वेदों के अद्य यावत् उपलब्ध ग्रन्थों के आधार पर ५२ गोतम ऋषियों का परिचय वैदिक भाग में कर दिया है। उन ऋषियों का परिचय इतिहास (महाभारत), पुराण (१८ महापुराण तथा उपलब्ध उपपुराण), रामायण आदि के आधार पर प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है।

जगत् की सृष्टि करने की कामना रखने वाले ब्रह्मा के मानस पुत्रों में अङ्गिरा एक मानसपुत्र के रूप में उदित होते हैं। पुराणेतिहास में ब्रह्मा के मानसपुत्रों की सङ्ख्या में पर्याप्त संख्या-भेद दृष्टिगोचर होता है।

महाभारत (१.६५.१०) में ब्रह्मा के ६ मानसपुत्र परिगणित हैं। ब्रह्माण्ड[१] पुराण में यह संख्या ८,९, १०, भागवत[२] पुराण में १०, वायु[३] में ७, विष्णु[४] में ९ तथा मत्स्य[५] में १० पाई जाती है। सभी पुराणों में ब्रह्मा के मानसपुत्रों में अङ्गिरा का नाम गिनाया गया है। यह उनकी प्राचीनता का प्रबल प्रमाण है। अङ्गिरा और अङ्गिरस का वैदिक स्वरूप वैदिक मन्त्रों और वैदिक वाङ्मय के आधार पर वैदिक भाग में वर्णित है। अब यहाँ उनके वंश में गोत्रप्रवर्तक तथा वंश प्रवर्तक

---

१. ब्र. ३, १.२१., ब्र. १, ५.७०, ब्र. ४,२.४७, ब्र. २, ३२.९६, ब्र.२, ९.१८

२. भा. ३.१२.२२

३. वा. २५.८२ वा. ५९.८८

४. वि. १.७.५

५. म. ३.६ म. १४५.९०

ऋषियों का उल्लेख वाञ्च्छनीय है। यद्यपि पुराणों में राजवंश का वर्णन मुख्यतया है तथापि प्रसङ्गवश उपस्थित गोतम ऋषियों का संकेत यत्र-तत्र उपलब्ध होता है।

अङ्गिरा की पत्नी तथा सन्तति – विष्णु पुराण (१.१०.७-८) से विदित है कि अङ्गिरा की पत्नी का नाम स्मृति था जिसने सिनीवाली, कुहू, राका तथा अनुमति नाम की ४ कन्यायें उत्पन्न कीं। अग्निपुराण (२०.११) से भी यही तथ्य प्रकट होता है। इसी पुराण (१८.३०) से ज्ञात होता है कि दक्ष ने अङ्गिरा को दो कन्याएँ प्रदान कीं।

मत्स्य (५.१४) तथा ब्रह्माण्ड (२.३७.४५) भी दो कन्याओं के साथ विवाह होने की स्थिति स्वीकार करते हैं। वायु (३०.४८) तथा ब्रह्माण्ड (२.१३.५३) में दक्ष ने अङ्गिरा को जामाता बताया है। भागवत (४.१.३४) से प्रकट है कि अङ्गिरा ने श्रद्धा में ४ उपर्युक्त कन्यायें उत्पन्न कीं। ऐसा प्रतीत होता है कि इन उपर्युक्त पुराणों में स्मृति और श्रद्धा नाम में परिवर्तन हो गया हो। भागवत (६.६.२.१९) से स्पष्ट होता है कि अङ्गिरा ने स्वधा में पितरों को तथा सती में अथर्वाङ्गिरस वेद को उत्पन्न किया। भागवत् (३.२४.२२) से विदित होता है कि कर्दम ने श्रद्धा का विवाह अङ्गिरा के साथ किया था।

वायु पुराण (२८.१४.१८) का कथन है कि अङ्गिरा ने स्मृति में उपर्युक्त ४ कन्याओं के अतिरिक्त दो पुत्र उत्पन्न किये – भरताग्नि तथा कीर्तिमान्। भरताग्नि (अग्नि) ने संहूती में पर्जन्य नामक पुत्र उत्पन्न किया। पर्जन्य ने मारीची (मरीचि-पुत्री) में हिरण्यरोमा को उत्पन्न किया जो प्रलयकाल तक लोकपाल कहा गया है। कीर्तिमान् ने धेनुका में अङ्गिरसों में श्रेष्ठ, वरिष्ठ तथा धृतिमान् नामक दो पुत्र उत्पन्न किये जिनके पुत्र और पौत्र सहस्र संख्या में बताये गये हैं। वायु पुराण का उपर्युक्त विवरण ब्रह्माण्ड (२.११.१७-२१) में उपलब्ध होता है। अन्तर केवल इतना है कि स्मृति का नाम स्मृत है जो अशुद्ध है, तथा संहूती के स्थान पर सद्वती है। वरिष्ठ के स्थान पर चरिष्णु है। ये सभी नाम पाठभेद के कारण पृथक्-पृथक् प्रतीत होते हैं।

भागवत (४.१.३५) से स्पष्ट होता है कि अङ्गिरा के उतथ्य तथा बृहस्पति दो पुत्र उत्पन्न हुए। उसी पुराण के अन्य स्थल से ज्ञात होता है कि उनके तीसरे पुत्र संवर्त हुए। मत्स्य (१९५. १-५) के द्वारा विदित होता है कि मरीचि-पुत्री सुरूपा अङ्गिरा की भार्या थी जिनमें १० पुत्र उत्पन्न हुये – आत्मा, आयु, दमन, दक्ष, सद, प्राण, हविष्मान्, गविष्ठ, ऋत, सत्य। ये आङ्गिरस नाम के सोमपायी दस देव कहलाते हैं। इनके अतिरिक्त सुरूपा ने सर्वेश्वर ऋषियों को भी उत्पन्न किया। बृहस्पति, गौतम संवर्त, उतथ्य, वामदेव, अजस्य (अयास्य), ऋषिज (उशिज) ये सभी गोत्रकार ऋषि हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भागवत जहाँ अङ्गिरा के ३ पुत्रों का उल्लेख करता है वहीं मत्स्य पुराण अङ्गिरा के सुरूपा में ७ पुत्रों को बताता है। इन तथ्यों को अधिक स्पष्ट करते हुए ब्र. पुराण (३.१.१०१-११३) का वर्णन इस प्रकार है –

अग्नि-पुत्र धीमान् अङ्गिरा के वंश को सुनें – जिस वंश में भरद्वाज और गौतम हुए, जो प्रभायुक्त तथा तेजयुक्त आङ्गिरस देव हुए। मरीचिपुत्री सुरूपा, कर्दमपुत्री स्वराट्, नुपुत्री पथ्या, ये तीनों अथर्वा की भार्याएँ हुईं। उन भार्याओं में कुलोद्वह अथर्वा के दायाद हुए। सुरूपा ने बृहस्पति को, स्वराट् ने गौतम, अयास्य, वामदेव, उतथ्य उशिति (उशिज) को उत्पन्न किया। पथ्या के धृष्णि, संवर्त और मानस पुत्र हुए। अयास्य का पुत्र कितव हुआ। उतथ्य का शरद्वान् हुआ। उशिज का दीर्घतमा तथा वामदेव का बृहदुक्थ हुआ। धृष्णि का पुत्र सुधन्वा और सुधन्वा का ऋषभ। ये ऋभुसंज्ञक रथकार देव कहे गये हैं। बृहस्पति से भरद्वाज हुए। बृहस्पति से आङ्गिरस देव कनिष्ठ थे। स्पष्ट जानकारी के लिये वंशक्रम दिया जा रहा है –
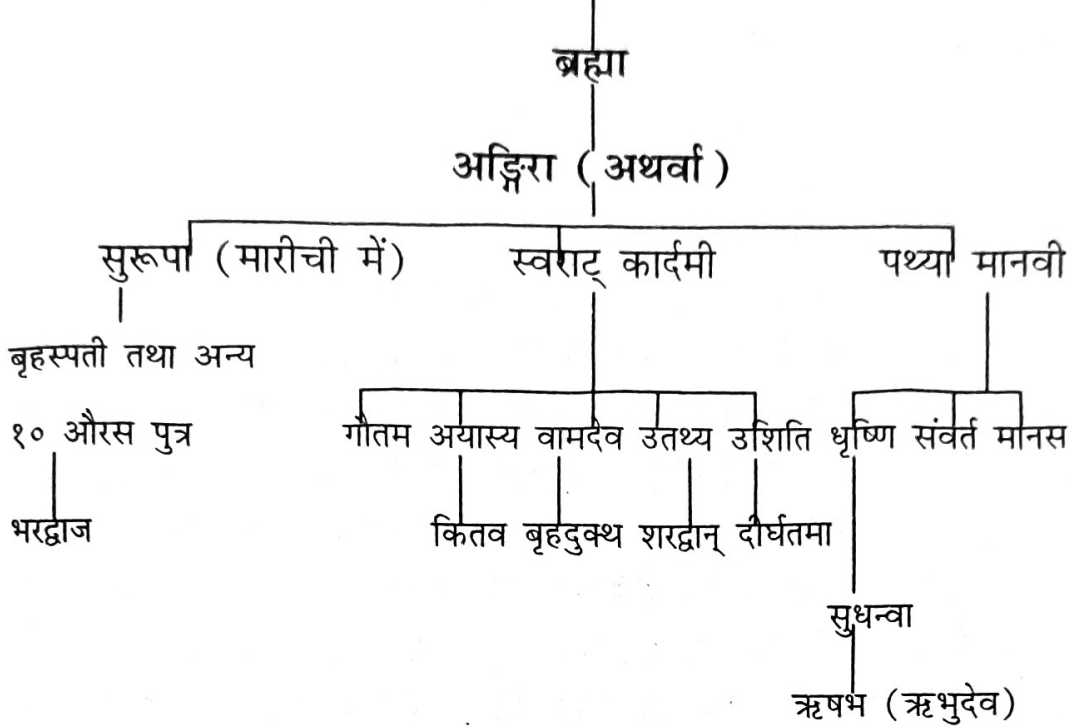
मत्स्य पुराण सुरूपा में ही १७ पुत्रों को उत्पन्न बतलाता है। जबकि ब्रह्माण्ड पुराण तीनों भार्याओं में १९ पुत्रों का उल्लेख करता है। वायुपुराण ब्रह्माण्डपुराण की समता रखता है। विशेष यह है कि वायु तथा ब्रह्माण्ड में अङ्गिरा का नाम ही अथर्वा है। अयास्य के स्थान पर अवन्ध्य नाम है जो अशुद्ध है। उशिति के स्थान पर उशिज नाम है जो शुद्ध है। उतथ्य पुत्र शरद्वान् है तथा अयास्य का विचित्त।

इस प्रकार स्पष्ट है कि अङ्गिरा की स्मृति, श्रद्धा, स्वधा, सती, सुरूपा, स्वराट् और पथ्या कुल ७ भार्याएँ थीं। इन सात भार्याओं में से केवल एक भार्या स्वराट् के द्वारा उत्पन्न पुत्रों के सम्बन्ध में परिचय देना इस ग्रन्थ का विषय है। क्योंकि सुरूपा के पुत्र बृहस्पति तथा उनके पुत्र भरद्वाज से भरद्वाजगोत्र प्रारम्भ होता है। पथ्या की सन्तति से केवलाङ्गिरस गोत्र प्रारम्भ होता है। स्वराट् की सन्तति से गौतमगोत्र प्रारम्भ होता है। अतः इस ग्रन्थ में गौतमगोत्रीय स्वराट् की सन्तति गौतम, अयास्य, वामदेव, उतथ्य, उशिज आदि से संबद्ध ऋषियों का परिचय देना अभीष्ट हैं। वेद के ५२ ऋषियों में से जितने ऋषि पुराणों

में वर्णित हुए हैं, उन सभी ऋषियों के देदीप्यमान चरित का अन्वेषण करना इस ग्रन्थ का मुख्य उद्देश्य है।

अङ्गिरस् (अङ्गिरा) – महाभारत में – अर्जुन के जन्म के समय पधारने वाले लोगों में एक यह भी थे (१.१२३.५२)। ब्रह्मा जी की सभा में इनके उपस्थित रहने का उल्लेख है (२-११.१९)। इन्होंने सूर्य की रक्षा की थी (३.९२.६)। यह आकाशगङ्गा के तट पर अपना दैनिक जप करते हैं (३.१४२.६)। यह अग्नि बनकर अपनी प्रभा से अन्धकार का निवारण करते हुए जगत् को ताप देने लगे और अन्त में अग्नि ने इन्हें अपना प्रथमपुत्र स्वीकार किया (३.२१७ २.७.८, १२. १७.१८.२०)। इन्होंने इन्द्र देवता से वरदान प्राप्त किया था (५.१८. ५-७)। दुर्योधन को अभेद्य कवच से सुसज्जित करते हुए द्रोणाचार्य ने इनका आवाहन किया था (७.९४.४५)। कार्तिकेय के अभिषेक के समय आने वाले लोगों में एक यह भी थे (९.४५.१०)। सनातन धर्म का पालन करनेवाले लोगों में से एक यह भी थे (१२.१६६.२३)। मेरु पर्वत पर शिव और पार्वती की उपासना करने वाले देवर्षियों में एक यह भी थे (१२.२८३.१०)। प्रथम उत्पन्न इक्कीस प्रजापतियों में से एक यह भी थे (१२. ३३४.३५)। उन प्रसिद्ध सात ऋषियों में से एक यह भी हैं जिन्होंने मेरु पर्वत पर एक मत होकर उस शास्त्र का प्रवचन और निर्माण किया जो चारो वेदों के समान आदरणीय और प्रमाणभूत है (१२.३३५.२९)। उन व्यक्तियों में एक यह भी थे जिन्होंने भगवान् शिव को नमस्कार करते हुए कृष्ण को देखा था (१३.१४.३९६)। प्रभास तीर्थ में एकत्र ऋषियों में एक यह भी थे (१३.९४.४)। पूर्वकाल में महर्षियों को बताये गये व्रतों के जिन फलों को अङ्गिरा ने भीष्म से बताया था उनका भीष्म द्वारा वर्णन (१३. १०६.९. ११.४८.७०.७१) किया गया है।

ब्राह्मण इस मर्त्यलोक और स्वर्गलोक में भी अजेय हैं। ये जल को दूध की भांति पी गये थे। तृप्ति न होने पर पृथ्वी का सारा जल पी गये।

पुनः जल के महान् स्रोत द्वारा पृथ्वी को जलपूर्ण किया। वायु पर क्रुद्ध होने पर इनके डर से वायु ने अग्निहोत्र की अग्नि में निवास किया। अग्नि का वर्ण सुवर्ण-सा था, धुआं नहीं था। लपटें ऊपर जाती थीं। पर आङ्गिरस के शाप से इसमें ये गुण नहीं रहे (१३.१५३, ३.५.८)। पूर्वक्षेत्र के विद्वान् ब्राह्मणों के अन्तर्गत इनका उल्लेख (१३.१६५.३८) है।

युधिष्ठिर का प्रश्न था – मार्कण्डेय! किस प्रकार अग्नि क्रुद्ध होकर तपस्या के लिए जल में प्रविष्ट हुए थे और किस प्रकार महर्षि अङ्गिरा भगवान् बनकर अपनी प्रभा से अन्धकार दूर करते हुए ताप देने लगे। उत्तर – प्राचीन काल में अङ्गिरा अपने आश्रम में ही रहकर उत्तम तपस्या करते हुए अग्नि से भी अधिक तेजस्वी होने के अपने उद्देश्य में सफल हो विश्व को प्रकाशित करने लगे। अग्नि यह सोचकर दुःखी हुए कि ब्रह्मा ने आपको अन्धकारनाशक प्रथम अग्नि के रूप में उत्पन्न किया। आप अपना स्थान ग्रहण कीजिये। अग्नि ने अपने को द्वितीय प्राजापत्य नामक अग्नि बने रहने देने का निवेदन किया। इस पर अङ्गिरा ने आग्रह किया – अग्निदेव! आप प्रजा को स्वर्गलोक की प्राप्ति कराने वाला पुण्यकर्म सम्पन्न करते हुए स्वयं ही अन्धकार-निवारक अग्नि पद पर प्रतिष्ठित हों तथा अपना प्रथम पुत्र स्वीकार करें। अग्निदेव ने ऐसा ही किया (३.२१७)। अदृश्य अग्निदेव को अङ्गिरा ने पुनः बुलाया (३.२२२)।

अङ्गिरस् की प्रथम पुत्री भानुमती देवी थी (महा.३.२१८.३)। दूसरी पुत्री रागा थी (३.२१८.४)। इनकी अन्य पुत्रियों के नाम सिनीवाली, अर्चिष्मती, हविष्मती, महिष्मती, महामती और कुहू हैं (३.२१८.५-८)।

निष्कर्ष – विष्णु पुराण में उपर्युक्त ४ कन्यायें सिनीवाली, कुहू, राका तथा अनुमति कही गई हैं। परन्तु महाभारत में अङ्गिरा की ८ कन्यायें बताई गई हैं।

स्पष्ट है कि सिनीवाली, कुहू, राका तो महाभारत और पुराणों में समान हैं पर पुराणों के अतिरिक्त महाभारत में ५ कन्याओं के नाम भानुमती, अर्चिष्मती, हविष्मती और महामती पृथक् हैं। पुराणों की अनुमति नामक कन्या महाभारत में नहीं है। संभव है कि पुराणों की अनुमति के स्थान पर भानुमती या महामती में से कोई एक हो, जो नाम भानुमती से कुछ रूप में साम्य रखता है।

सिनीवाली (चतुर्दशी युक्ता अमा), अर्चिष्मती (शुद्ध पूर्णमासी), हविष्मती (प्रतिपद् युक्ता पूर्णिमा) – (राका), महिष्मती (चतुर्दशी युक्ता पूर्णिमा), – अनुमति या महामती (प्रतिपद् युक्ता अमा) और कुहू (शुद्ध अमा)।

पुराणों में अङ्गिरा –

१. **गौतम** – परीक्षित के प्रायोपवेश के समय, शरद्वान, उतथ्य तथा मेधातिथि गौतम के साथ उपस्थित थे (भा. १.१९.९)।

४. **गौतम** – यदि अथर्वा इन्हीं का नाम है तो ये युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में गौतम तथा वामदेव के साथ वृत थे (भाग. १०.७४. ७–१०)।

सूर्यग्रहण के समय स्यमन्तपञ्चक तीर्थ में कृष्ण रामदर्शन हेतु उपस्थित ऋषियों में अङ्गिरा शतानन्द, गौतम, वामदेव के साथ थे भाग १०.८४.५।

५. **गौतम** – श्रावण मास में इन्द्र आदित्य के साथ अङ्गिरा सूर्य रथ पर विभूति रूप में विभूषित रहते हैं (भाग १२.११.३७ ब्र. २, २३.११, वि. २, १०.९)।

८. **गौतम** – चतुर्थ द्वापर के अङ्गिरा वेदव्यास थे (वा. २३.११८)।

मत्स्य पु० (१५.१६) के अनुसार मार्तण्ड मण्डल में मरीचिगर्भ लोक है जहाँ हविष्मान् अङ्गिरस् सुत पितर रहते हैं। स्नानानन्तर अङ्गिरा को तर्पण करें (मत्स्य १०१.१८)। प्रयाग में अङ्गिरसप्रमुख ब्रह्मर्षि रहते

हैं। (महा. ३.८५.७१ म. १०५.१७)। अङ्गिरा आदि ब्रह्मवादी महर्षि हैं (भाग ४.२९.४३)।

भीष्म के विनशन स्थान पर भूमि पर गिरने पर उन्हें देखने हेतु अङ्गिरा आदि ऋषि आये थे। (आ.१.९.८)। ब्रह्मा पुत्र भगवान् अङ्गिरा ने सन्तानहीन चित्रकेतु राजा की कृतद्युति नामक प्रधानरानी को यज्ञ कर, त्वष्टा को प्रसन्नकर चरु प्रदान किया। ऋषि ने चित्रकेतु से कहा - हर्ष - शोकप्रद एक पुत्र होगा (६-१४, १४-३०, ३६-६१)। ईर्ष्यालु रानियों द्वारा पुत्र को विष देने के बाद चित्रकेतु के यहाँ नारद और अङ्गिरा आये (भाग. ६.१४.६१)।

शोकमग्न चित्रकेतु के समक्ष अङ्गिरा, गौतम, आरुणि, च्यवन तथा अन्य उपस्थित हुए। अङ्गिरा ने राजा से कहा – इनमें आप दोनों कौन हैं (भा. ६.१५.१०.१२.१७.२६)। मैं पुत्र-कामना वाले तुमको पुत्र देने वाला हूँ। अब मैं तुम्हें परम ज्ञान दे रहा हूँ। निमि के द्वारा यज्ञ कराने हेतु वसिष्ठ वृत हुए। पर वसिष्ठ इन्द्र के यहाँ यज्ञ में चले गये। वहाँ से आने पर वसिष्ठ ने देखा कि निमि यज्ञ कर रहे हैं। दोनों ने दोनों को शाप दिया कि विदेह हो जाओ। ऋषिओं ने विदेह का देह मथा।

उससे जनक, वैदेह और मिथिल संज्ञा हुई। उसने ही मिथिला निर्मित की भा. ९.१३. १-१३। शतानन्द, गौतम, अङ्गिरा, वामदेव, आदि ने कृष्ण की स्तुति की। कृष्ण तथा राम के दर्शन हेतु ये ऋषि आये थे (भा. १०.८४. ३-५)। अङ्गिरा, वामदेव, सभी ऋषि पिण्डारक गये (भा. ११.१.१२)। शरशायी भीष्म के पास, परशुराम, कक्षीवान् गौतम आङ्गिरस (बृहस्पति) पहुँचे (भा. १.९.८)। नारद चित्रकेतु को विद्या प्रदान कर ब्रह्मलोक अङ्गिरा के साथ गये (भा. ६.१६.२६)।

सन्तानहीन रथीतर के प्रार्थना करने पर प्रजातन्तु के लिये अङ्गिरा ने उसकी भार्या में ब्रह्मवर्चस्वी पुत्र आङ्गिरस उत्पन्न किया जो क्षत्रोपेत द्विजाति रथीतर प्रवर हुए (भा. ९.६, १-२)। वामन अवतार के समय अङ्गिरा उपस्थित थे (भा. ८.२३.२०)। द्वारिका में कृष्ण-दर्शन हेतु

अन्य ऋषियों के साथ अङ्गिरस् गये थे (भाग० ११.६.२) विद्याधर सुदर्शन रूपदृप्त होकर विचरण कर रहे थे। अतः विरूप आङ्गिरस ऋषियों ने शाप देकर सर्प योनि में उसे स्थापित किया (भा.१०.३४.१३-१५)।

शर्याति मानव राजा ने ब्रह्मिष्ठ होकर अङ्गिरसों के सत्र में द्वितीय अहः का प्रवचन किया था (भा. ९.३.१)।

ब्रह्मा ने अङ्गिरा को शिर से उत्पन्न किया।

ब्रह्मर्षियों से सत्कृत ऋचाओं के अभिमानी देव श्रेष्ठ प्रत्यङ्गिरा से उत्पन्न हुए हैं (वि. १, १५.१३६)।

अङ्गिरा ने वरुण यज्ञ में शुक्र होम अङ्गार में किया तो अङ्गिरा हुए। अग्नि ने अपना पुत्र माना (ब्र. ३, १.३९-४०)। तप – अमरकण्टक में तप किया (ब्र. ३.१३.५ वा. ७७.५)।

देवगण – आठ देवगण में अङ्गिरा (वा. ६४.२) –

अङ्गिरस् के १५ पक्ष में अयास्य, उतथ्य, वामदेव, उशिज किंभय या कितव गौतम के ५ पक्ष हैं।

३३ आङ्गिरसों में श्रेष्ठ मन्त्रकृत्, गौतम पक्ष के उतथ्य शारद्वान् वाजिश्रवा, वामदेव, दीर्घतमा, कक्षीवान् आदि प्रतीत होते हैं (मत्स्य १४५, १०१-१०५) वा. ५९.८८-१०२ तक; ८८.८८ में अङ्गिरा नाम। शेष ३३ में श्रेष्ठ मन्त्रकृत् हैं। ज्ञान तथा सत्य से ऋषि अङ्गिरा की भार्या का नाम शिवा था (३.३.२२५, १-३)।

वारुण के नाम से इनके आठ पुत्रों का उल्लेख मिलता है।

बृहस्पति, उतथ्य, पयस्य (अयास्य), शान्ति, घोर, विरूप, संवर्त और सुधन्वा। ये सभी वह्नि से उत्पन्न ज्ञाननिष्ठ निरामय थे (महा० अनुशासन पर्व, अध्याय ८५)।

वामदेव

४. गौतम - ४ वामदेव - युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में कृष्णानुमोदित वामदेव, गौतम, अथर्वा, कृप आदि के साथ वृत थे (भा. १०.७४. ७-१०)। सूर्यग्रहण में स्यमन्तपञ्चक तीर्थ में कृष्ण तथा राम के दर्शन-हेतु उपस्थित ऋषियों में वामदेव, गौतम, शतानन्द, अङ्गिरा के साथ उपस्थित थे (भा. १०.८४.२-५)। कृष्ण के साथ मिथिला जाते समय वामदेव आरुणि आदि थे (भा. १०.८६.१८)। पिण्डारक जाते समय कृष्ण के साथ वामदेव अङ्गिरा आदि थे (भा.११.१.१२)। वामदेव अङ्गिरस् के ३३ पक्षों में एक थे। (ब्र. २.३२.९९-११० म. १-१०४ समान। वा. ५९.९०.१०१। म. १९६.४, १९६.३५-३६) तपस्या से ऋषि (ब्र. २.३२.९९) आङ्गिरस मन्त्रकर्ता। सुरूपा पुत्र, गोत्रकार प्रवर त्रिप्रवर। अङ्गिरा बृहदुक्थ से अविवाह।

३. वामदेव – कुशद्वीप के हिरण्यरेता के पुत्र (भा. ५.२०.१४)।

४. वामदेव – अथर्व अङ्गिरा के पुत्र (३.१.१०५)। श्री परशुराम की तपस्या के स्थल पर – वामदेव आदि ने तप की प्रशंसा की (ब्र ३. २३.४, ४.३९-५६। म. १४५. ९३) तपस्या से ऋषि हुए। (वा. ६५. १००-१०२)। बृहदुक्थ के पिता।

९. वामदेव – १७ वें द्वापर में गुहावासी शङ्कर के पुत्रस्वरूप। उतथ्य तथा वामदेव (वा. २३.१७७)। वामदेव – अङ्गिरस के १५ पक्षों में एक (वा. ६५.१०६)। महाभारत – वामदेव एक ऋषि का नाम है (२.७.१७) इन्द्र की सभा में इस सम्पूर्ण अध्याय (३.१९२) में परीक्षित - पुत्रों द्वारा वामदेव के अश्वों को न लौटाने तथा अन्ततः वामदेव द्वारा अपने अश्व पुनः प्राप्त कर लेने की कथा है (इतिहासं

पुरातनं गीतं दृष्टार्थतत्त्वेन वामदेवेन धीमता)। वसुमनस् को उपदेश दिया गया।

बृहदुक्थ – वैदिक भाग में वामदेव का पुत्र

बृहदुक्थ १ – ऋषीक – जिसने सत्य से ऋषित्व प्राप्त किया। आङ्गिरस मन्त्रकृत्। (ब्र. २.३२.१०१.१११ वा. ५९.९३.१०१)।

बृहदुक्थ २ – स्वारोचिष मनु के पुत्र (ब्र. २.३६.१९)।

बृहदुक्थ ३ – (बृहदुक्थ वा) देवरात का पुत्र, महावीर्य का पिता। निमि से सातवीं पीढ़ी में जनक राजा बृहदुक्थ हुआ, पर यह गोतमगोत्रीय नहीं है।

असिज

असिज – वामदेव पुत्र (वा. ६५.१०२) –

पत्न्यामासन्नगर्भायामसिजः संस्थितः किल।
भ्रातुर्भार्यां स दृष्ट्वाथ बृहस्पतिरुवाच ह॥ वा. ९९.१४१

असिज – श्रेष्ठ ३३ आङ्गिरसों में एक था (ब्र. २.३२.१११)। बृहस्पति का बड़ा भाई असिज ऋषि था जिसकी स्त्री ममता थी (वा. ९९.३६, ब्र. ३.७४.३६)। उशिज ऋषि की ममता भार्या। अतः असिज, अशिज और उशिज तीनों नाम एक ही ऋषि के प्रतीत होते हैं। तीनों में उशिज नाम अत्यन्त प्रामाणिक प्रतीत होता है।

जिसक पुत्र का नाम औशिज है और जिसे कक्षीवान् कहते हैं।

उशिज १ औशिज (वा. ५९.९०.९३) ऋषि – ज्ञान से ऋषित्व प्राप्त किया - सत्यादृषितां गताः (ब्र. २.३२.९९) तपसा ऋषितां गताः (ब्र. ३.७४.३६)। उशिज पत्नी ममता में बृहस्पति द्वारा हठात् मैथुन। अतः उशिज पुत्र औशिज, दीर्घतमा। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि दीर्घतमा वामदेव का पौत्र था (वायु ४९.१७)। "पत्न्यामासन्न" वायुवत्। वायु और मत्स्य में यह शब्द क्रमशः असिज और उशिज है।

ब्रह्माण्ड में दोनों हैं (४८.३२ भी समान) उशिज। (९५.११)। आङ्गिरस प्रवर।

उशिज – वा. ६५.१००.१०६ उसिज।

असिज, अशिज, उशिज, उचथ्य, सभी नाम एक ही ऋषि के हैं। पर उशिज का पुत्र कक्षीवान्, उचथ्य का पुत्र दीर्घतमा है। उशिज उचथ्य की भार्या का नाम ममता था।

उशिज

भार्या ममता, बृहस्पति का अग्रज। तप से ऋषि हुए। आङ्गिरस प्रवर देखिये, असिज (ब्र. ३.७४.३६-४६ ब्र. २.३२.९९, म. १९४-११)। अङ्गिरस के ३३ पक्षों में एक पक्ष (वा. ६५.१००.१०६)। अङ्गिरा – अर्थवन् के पुत्र (ब्र. ३.१.१०५)। औशिज – गर्भ से ऋषि (वा. ५९.९०.९३)।

दीर्घतमा गौतम – सुदेष्णा में दीर्घतमा से अनपान पुत्र हुआ। उसने सुदेष्णा में अन्य अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, पुण्ड्र, सुह्म को उत्पन्न किया। देश को बसाया या उनका अधिपति हुआ। पुराण में दीर्घतमा के पिता उशिज हैं और उनकी माता ममता है। वेद में ये उचथ्य के पुत्र औचथ्य और मामतेय कहे गये हैं। बृहस्पति के शाप से ये जात्यन्ध हुए थे। पर सुरभि के द्वारा वरदान से चक्षुष्मान् हुए। इसी घटना के कारण ये दीर्घतमा कहलाये –

गवा हृततमः सोऽथ गौतमः समपद्यत – सुरभि कामधेनु के द्वारा इनका (अन्धकार) अन्धत्व हरण करने के बाद चक्षुष्मान् होने पर इनको दीर्घतमा कहा गया। वेदों में दीर्घतमा अत्यन्त वैज्ञानिक संवत्सर-प्रर्वतक प्रमाणित हुए हैं। **ब्रह्माण्ड पुराण** (अ. ७४ तृतीय पाद ३३-१००) में दीर्घतमा की कथा वर्णित है। दीर्घतमा मामतेय ने दौष्यन्ति (दुष्यन्तपुत्र) भरत का राज्याभिषेक किया। इस कारण भरत ने समस्त पृथ्वी का विजय कर परिभ्रमण किया और अश्वमेध यज्ञ किया ऐतरेय ब्राह्मण, २३।

दीर्घतमस् (महाभारत) – एक ऋषि का नाम है। भीष्म ने कहा है कि महर्षि उतथ्य की पत्नी का नाम ममता था। जब ममता उतथ्य के वीर्य से गर्भवती थी और उसके गर्भ में एक ऐसा शिशु था जो गर्भावस्था में ही वेद और उसके छः अङ्गों का अध्ययन कर चुका था। तब उतथ्य के छोटे भ्राता देवगुरु बृहस्पति ममता के पास समागम के लिये आये। उस समय गर्भस्थ शिशु ने बृहस्पति को लात मारी जिससे उनका वीर्य भूमि पर स्खलित हो गया। इस पर क्रुद्ध होकर बृहस्पति ने उस शिशु को शाप दिया, जिसके कारण उसका अंधे के रूप में जन्म हुआ (तमो दीर्घं प्रवेक्ष्यसि)। दीर्घतमस् की पत्नी प्रद्वेषी नाम की एक ब्राह्मणी थी जिससे दीर्घतमस् ने सौरभेय से गोधर्म का ज्ञान प्राप्त करके उसका पालन आरम्भ किया। इसके फलस्वरूप आश्रम के मुनियों ने इनका परित्याग कर दिया। इनकी पत्नी प्रद्वेषी ने भी इनकी तीव्र भर्त्सना करते हुए कहा – वह इनका तथा इनके पुत्रों का और अधिक पालन नहीं करेगी। उस समय क्रुद्ध होकर दीर्घतमस् ने इस मर्यादा की स्थापना की कि पत्नी को यावज्जीवन एक ही पति के प्रति निष्ठा रखनी होगी चाहे वह पति जीवित हो या मृत –

अद्यप्रभृति मर्यादा मया लोके प्रतिष्ठिता।
एक एव पतिर्नार्या यावज्जीवं परायणम्।
मृते जीवति वा तस्मिन्नापरं प्राप्नुयाद्वरम्॥

तब प्रद्वेषी ने अपने पुत्रों द्वारा दीर्घतमस् को बंधवाकर गङ्गा में फिंकवा दिया। दीर्घतमस् अनेक राजाओं के क्षेत्र से बहते हुए बलि के देश में पहुँचे जहाँ बलि ने इन्हें नदी से बाहर निकाला और इनसे अपनी रानी से पुत्र उत्पन्न करने का निवेदन किया। बलि की पत्नी सुदेष्णा ने इन्हें नेत्रहीन देखकर अपने स्थान पर अपनी एक शूद्रा दासी को भेज दिया। उस दासी से काक्षीवत आदि ग्यारह पुत्र उत्पन्न किये। ये पुत्र स्वयं दीर्घतमस् के थे, उनके नहीं। अतः उन्होंने अपने पुत्र के लिये सुदेष्णा को पुनः इनके पास भेजा। उस समय इन्होंने सुदेष्णा का स्पर्श करके कहा कि उसे अंग, वंग, कलिंग, पुण्ड्र और सुघ्न संज्ञक पाँच पुत्र अपने पुत्र होंगे। इन पुत्रों के राज्य इन्हीं पुत्रों के नाम से

विख्यात हुए (१.१०४)। इन्द्र की सभा में ये उपस्थित हुए (२.७.११)। अन्धेपन के कारण पहले इनका नाम दीर्घतमस् था पर जब इन्होंने केशव के रूप में नारायण की स्तुति करके पुनः नेत्र प्राप्त कर लिये तब ये गोतम के नाम से विख्यात हुए (१२.३४१.५४)। ये पश्चिम दिशा का आश्रय लेकर निवास करने वाले ऋषि हैं (१३. १६५.४२)।

कक्षीवान्

१. **गौतम** – विनशन स्थान पर भीष्म के भूमि पर गिरने पर अनेक ऋषियों के साथ धौम्य, बादरायण, सशिष्य परशुराम, त्रित कक्षीवान् गौतम भी दर्शनार्थ गये थे – भीष्म पु० (१.९. ६-८)।

दीर्घतमा के कक्षीवान् पुत्र हुए जिन्होंने सम्यक् अध्ययन किया जो ब्रह्मवादी, सिद्ध, प्रत्यक्षधर्मा, बुद्ध स्थिर श्रेष्ठतम हुए (ब्र. ३, ७४.७३)।

१. कक्षीवत् – (वा. ९.११३. ब्र. ३.६६.८८ समान) तपस्या से सिद्ध हुए। क्षत्रोपेत द्विजाति, विश्वामित्र, मांधाता, संकृति कपिः आर्ष्टिषेण, कक्षीवान् ये सब तपस्या से ऋषि हुए। सभी राजर्षि महती सिद्धि प्राप्त कर चुके थे।

२. (ब्र. २.३२.१११) ये श्रेष्ठ ३३ आङ्गिरसों में एक थे।

३. (ब्र. ३.७४.७१) दीर्घतमा से उत्पन्न गिरिव्रज में, तप में पिता का साथ (३.७४, ७१) रहा। भाई चाक्षुष के साथ ब्रह्मत्व प्राप्त किया था। १००० कूष्माण्ड गौतमों का पिता। मन्त्रकृत् तथा अङ्गिरा पक्षीय (ब्र. ३.७४.९९)

४. **कक्षीवत्** – सामग, पौष्यञ्जि के ४ शिष्यों में एक यह था (वि.३.६.६)। **वाजश्रवा** – यह ऋषीक है जिसने सत्य द्वारा ऋषित्व प्राप्त किया था (ब्र. २.३२.१०२-११० वा. ५९.९४.१०१ समान)। ये आङ्गिरस तथा मन्त्रकृत् थे और २४ वें वेदव्यास थे। पुराण सुना तथा इसे सोमशुष्मन् को सुनाया (ब्र. २.३५.२२) महाभारत (१४.९६.१०४)

में यही नाम वाजिश्रवा के रूप में है जो अशुद्ध नाम है। शुद्ध नाम होना चाहिये। – **बाभ्रव्य** – (म. २१.३०) बाभ्रव्य, सुमन्त्र, पञ्चाल देशवासी यह शास्त्रप्रणेता था।

उद्दालक आरुणि

आरुणि – १. चित्रकेतु की सान्त्वना हेतु अङ्गिरा तथा नारद के आने पर चित्रकेतु द्वारा सिद्ध ऋषियों के नाम में अङ्गिरा, हेतु, गौतम, आरुणि, च्यवन आदि बताये गये हैं (भा. ६.१५.१३)।

आरुणि – २. तृतीय सावर्णि मन्वन्तर में सप्तषियों में आत्रेय आरुणि कहे गये हैं। अत्रिगोत्र संबन्धी हैं (ब्र. ४.१.७९)।

आरुणि – ३. साध्य देवों में वर्णित हैं, म. १७१.४३ अरुण्यक के साथ (वा. २३.१५५)। वैवस्वत मन्वन्तर के १५ वें द्वापर में वेदशिरा नामक व्यास होंगे। तृतीय द्वापर में भार्गव, अङ्गिरा। १६ वें द्वापर में उशना च्यवन पुत्ररूप में । २३ वें में उशिज बृहदुक्था। २७ वें में अक्षपाद पुत्र रूप में होंगे।

आरुणि – ४. एकादश मनु धर्मसावर्णि के समय सात ऋषियों में एक (वि. ३.२.३०)।

आरुणि – ५. यजुर्वेद की ८३ शाखाओं में प्रसिद्ध तीन उदीच्य, मध्यदेश, प्राच्य, मध्यदेश में प्रथम रूप में स्तुत हैं (वा. ६१.९)।

उद्दालक – (महा. १.३.२१-३३) आयोद धौम्य के तीन शिष्यों में आरुणि पाञ्चाल एक थे। केदारखण्ड कियारी (खेत) का मेड़ बांधने के लिये गुरु ने उन्हें भेजा। वे उसे बांध नहीं सके। मेड़ पर सो जाने पर जल रुका। कभी उपाध्याय ने पूछा। आरुणि कहाँ गये। शिष्यों ने कहा, आपने ही भेजा था – **केदारखण्डं बधान**। शिष्योंसहित गुरु गये। शब्द किया, **आरुणे क्वासि-ब्रूहि।** उठकर उपस्थित हुआ। बांधने में असमर्थ होकर स्वयं प्रविष्ट हो गया। आपको

प्रणाम है, आज्ञा दें क्या करूँ? गुरु ने कहा आपका नाम उद्दालक हो गया। इससे स्पष्ट है कि पञ्चाल देश के निवासी आरुणि थे। पर वायु (४१.४१-४७) के अनुसार उनका आश्रम हिमालय में था – **उद्दालकाश्रमो हिमवति**। उद्दालक – हिमवान् के पूर्व तट पर सिद्धावास है जिसे कलापग्राम कहते हैं। जहाँ उद्दालक का आश्रम है (वा. ४१.४४)।

शुक्ल यजुर्वेद के १५ याज्ञवल्क्य-शिष्यों में उद्दल नामक ऋषि उद्दालक ऋषि ही प्रतीत होते हैं। वा. ६१.२५ वा. ६०-६६ के अनुसार शाकपूणि के चार शिष्यों में केतव उद्दालकि थे। यह ज्ञात होता है कि ऋग्वेद की शाखाओं में इनकी एक शाखा है जिसका इन्होंने प्रवर्धन, उपबृंहण, अध्यापन किया। ऐसा भगवद्दत्त ने वैदिक वाङ्मय के इतिहास ग्रन्थ में निरूपित किया है।

अरुण का पुत्र आरुणि था। यह उपवेशि का शिष्य था। जनमेजय के सर्प सत्र में (महा १.५३.७) उद्दालक, श्वेतकेतु सदस्य थे।

श्वेतकेतु

श्वेतकेतुः (१) मध्यमाध्वर्युः (ब्र. २.३३.१६)। (२) **द्वाविंशव्यासस्य लाङ्गली नाम्नः पुत्रः** पर ये वैदिक श्वेतकेतु नहीं प्रतीत होते। यों बृहद्देवता में ब्रह्माण्ड तथा वायु पुराण में मधुकपिङ्ग आचार्यों के साथ अध्ययन में इनका नाम आने से वैदिक श्वेतकेतु ही प्रतीत होते हैं। जनमेजय के सर्प सत्र में (महा. १.५३.७) उद्दालक और श्वेतकेतु सदस्य थे। श्री कृष्ण के दूत बनकर हस्तिनापुर जाते समय मार्ग में दिव्य ऋषियों का मिलन होता है, जिनमें अकृतव्रण श्वेतकेतु तथा श्री परशुराम जी मुख्य थे (उद्योग पर्व ८४.६२)।

अरुण – भागवत (८.१३.२५) के अनुसार अरुण ११ वें मन्वन्तर के सात ऋषियों में एक ऋषि हैं। अरुण ने ५ आचार्यों का नेतृत्व करते हुए अश्वपति कैकेय से वैश्वानर विद्या प्राप्त की थी। आहिताग्नि के स्थान पर सत्यवदन नियमकर्ता थे।

श्वेतकेतु

१. उद्दालक के पुत्र एक मुनि का नाम है (१.५३.७)। ये जानमेजय के सर्पसत्र में सदस्य बने (१२२.१०.२१)। (उद्दालकपुत्र श्वेतकेतु मुनि ने यह मर्यादा स्थापित की कि व्यभिचार भी भ्रूण–हत्या के समान पाप है। ऐसा इन्होंने क्रोध के कारण किया था क्योंकि एक दिन एक ब्राह्मण ने आकर इनकी माता को पकड़कर उनका अपहरण कर लिया। किन्तु उद्दालक ने इस अपहरण को इसलिये क्षमा कर दिया क्योंकि प्राचीन काल से ऐसा होता आया था (२.७.१२)। ये मन्त्रशास्त्र में निपुण थे। अपने आश्रम में इन्होंने सरस्वती का प्रत्यक्ष दर्शन किया था। श्वेतकेतु और अष्टावक्र दोनों वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ और

आपस में मामा-भानजे थे। ये दोनों जनक राजा के यज्ञ में उपस्थित हुए (१२.३४.२२)। उद्दालक ने इन्हें अपने एक शिष्य द्वारा उपलब्ध कराया था। (५७.१०) ब्राह्मणों के साथ छल करने के कारण उद्दालक ने इनका परित्याग किया। औद्दालकि उत्तर दिशा के ऋषि थे (१३.१६५.४५)।

उतथ्य

१. गौतम – परीक्षित के प्रायोपवेश के समय अन्य शरद्वान्, गौतम आदि ऋषियों के साथ उपस्थित थे (भा. १.१९.९)।

१. उतथ्य – अङ्गिरा से श्रद्धा में ४ कन्याओं के अतिरिक्त (सिनीवाली कुहू, राका, अनुमति) स्वारोचिष मन्वन्तर में उतथ्य भगवान् और बृहस्पति (भा. ४.१.३३-३५, म. १.१४५.९३, ब्र. समान २.३२.९९) तपस्या से ऋषि हुए। ३३ आङ्गिरसों में एक ब्र. २.३२. ११० वा. ५९.९०) ९ गौतम पक्षों में एक।

स्वराट् पुत्र, उतथ्य पुत्र शरद्वान् थे (ब्र. ३.१.१०५)।

आङ्गिरस पक्षों में एक, अयास्य, उतथ्य, वामदेव, औशिज कितव। आङ्गिरस १५ पक्ष (ब्र. ३.१.११२)।

आङ्गिरस में गौतमगोत्रीय – अङ्गिरा, उतथ्य वाजश्रवा, अयास्य, वामदेव, असिज, बृहदुक्थ, दीर्घतमा कक्षीवान् (ब्र. २.३२.११०, ३३ वा. ५९.१ समान)। ब्र. से विशेष ३३ पक्षों में त्रित, शरद्वान्, सुचित्ति, ऋषिज बृहच्छुल्क म. १४५.१०४ २५वें त्रेता में चक्रवर्ती मांधाता के समय उतथ्य थे। स्वराट् में उतथ्य हुये पुत्र शरद्वान्। ब्रह्माण्ड १५ पक्ष (ब्र. ३.७३.८९.९०)।

२. उतथ्य – मरीचि देव। द्वादश मरीचि देव में एक (ब्र. ४.१.५९)।

३. उतथ्य – उतथ्य सुरूपा पुत्र (म. १९६.४)।

४. उतथ्य – सत्रहवें द्वापर में देव कृतंजय जब व्यास होंगे तो मैं (शङ्कर) गुहावासी अवतार धारण करूंगा। मेरे पुत्र उतथ्य वामदेव महाकाल महालय होंगे (वा. २३.१६३-१७०)।

५. उतथ्य – बृहस्पति का बड़ा भाई, पत्नी ममता तथा पुत्र दीर्घतमा था (वि. ४.१९.१६)। इससे यह प्रमाणित होता है कि उतथ्य, उशिज, उचथ्य तीनों एक ही व्यक्ति के नाम थे। पर उतथ्य के पुत्र शरद्वान्, उशिज तथा उचथ्य के पुत्र दीर्घतमा हुए। उशिज के पुत्र कक्षीवान् औशिज कहलाये।

उतथ्य परिचय – अङ्गिरा से श्रद्धा में उत्पन्न हुए (भा. ४.१.३३.३५) स्वारोचिष मन्वन्तर में प्रख्यात थे। ये स्वराट्पुत्र भी वर्णित हैं (ब्र. ३.१.१०५ वा. ६५.१००.१०१)। इनके पुत्र का नाम शरद्वान् है महाभारत (१९६.४) ने इन्हें सुरूपापुत्र भी बताया है। इन्होंने तपस्या से ऋषित्व प्राप्त किये (ब्र. २.३२.९९ म. १४५.९३ तथा वा ५९.९० समान)। ३३ आङ्गिरसों में एक थे (ब्र. २.३२.११० वा. ६५.१००.१०१ वा. ५९.१०१ म. १४५.१०४)। १५ आङ्गिरस पक्षों में एक (ब्र. ३.१.११२) **काल** – १५ वें त्रेता में चक्रवर्ती मांधाता के पुरोहित थे। ये द्वादश मरीचि देवों में एक थे (ब्र. ४.१.५९)। सत्रहवें द्वापर के देवकृतंजय व्यास के समय शंङ्कर गुहावासी रूप में अवतीर्ण थे। उनके पुत्र उतथ्य (वा. २३.१.१६३.१७०) परीक्षित के प्रायोपवेश के समय शरद्वान्, गौतम के साथ उतथ्य भी उपस्थित थे (भा. १.१९.९)। ऐसा प्रतीत होता है कि उचथ्य, उतथ्य और उशिज एक ही व्यक्ति थे क्योंकि ममता भार्या थी। पर ममता के पुत्र दीर्घतमा थे और उतथ्य के शरद्वान्। औचथ्य दीर्घतमा थे। शरद्वान् औतथ्य। उचथ्य वेद में आते हैं। वेद में कक्षीवान् के पिता का नाम उशिज है। मान्धातृ यौवनाश्व को अङ्गिरस् उतथ्य द्वारा राजनेता के कर्तव्य का उल्लेख (महा. १२.९०.१) है। सोम की पुत्री भद्रा के साथ इनके विवाह का उल्लेख (महा. १३.१५४.२३) है भद्राहरण वरुण ने किया। उतथ्य ने समुद्र का जल पी लिया। वरुण का स्थान ६००० विजलियों के प्रकाश से युक्त था।

इन्होंने उस स्थान को ऊसर बना दिया। सरस्वती से भी कहा – तू समुद्र के सूख जाने से इस मरुभूमि में विलीन हो जा। यह प्रदेश अपुण्य हो जाए। भद्रा को लेकर उतथ्य वापस आये। यह अध्याय व्यक्त करता है कि राजस्थान में पहले समुद्र था। उसके सूख जाने से सरस्वती मरुभूमि में विलीन हो गई। उतथ्य से श्रेष्ठ किस क्षत्रिय को समझते हो बताओ (महा. १३.१५४ अध्याय) में सविस्तर कथावर्णन है। भद्रा की तपस्या – सोम की पुत्री भद्रा रूपवती थी। अङ्गिरा कुल में उत्पन्न हुए उतथ्य को सोम ने देखा। भद्रा ने उतथ्य-प्राप्ति-हेतु तीव्र तप किया। अत्रि ने अपनी पौत्री का विवाह उतथ्य से कर दिया। इस भद्रा को वरुण चाहता था। उसने यमुना में स्नान करते भद्रा का हरण किया। उसे वरुण अपने नगर (जो विद्युत् युक्त था) ले गया। नारद ने उतथ्य को बताया कि भद्रा का हरण वरुण ने किया है। उतथ्य ने नारद से कहा कि आप जाकर वरुण से कह दीजिये कि वह मेरी भार्या को छोड़ दे। वरुण ने कहा – मैं नहीं छोड़ूँगा। नारद ने कहा कि मेरा गला पकड़कर मुझे उन्होंने ढकेल दिया है। वे आप की भार्या को नहीं छोड़ेंगे। उतथ्य को क्रोध आया। वे समुद्र का जल पी गये। समस्त जल पी लेने के बाद मित्रों द्वारा वरुण से निवेदन करने पर कि भद्रा को छोड़ दीजिये। वरुण ने नहीं छोड़ा। इस पर उतथ्य ने भूमि से कहा तू वरुण के स्थान को बता जहाँ ६००० बिजलियाँ प्रकाशित हैं। तत्काल वरुण का नगर समुद्र के सूख जाने पर ऊसर बन गया। सरस्वती नदी से उतथ्य ने कहा – तू अदृश्य होकर मरु के भीतर चली जा। तुम्हारे द्वारा त्यक्त देश अपुण्य हो जाए। समस्त देश के सूख जाने पर जलेश्वर वरुण भद्रा को उतथ्य को समर्पित कर और शरण में आये। उतथ्य ने पत्नी प्राप्त कर वरुण तथा समस्त जगत् को जल के कष्ट से मुक्त किया। उतथ्य ने वरुण से कहा – तुमहारे चिल्लाने पर भी मैंने तपस्या के बल से भार्या को प्राप्त कर लिया।

शरद्वान्

१. **गौतम** – शारद्वत, परीक्षित के गङ्गा में प्रायोपवेश के समय अन्य उतथ्य, गौतम, ऋषियों के साथ आये थे (भा. १.१९.९)।

२. **गौतम** – गौतम अहल्या के वंश में पुत्र शतानन्द, उनके सत्यधृति, उनके पुत्र शरद्वान् हुए। उनके कृप पुत्र और कृपी पुत्री हुई (भा. ९.२१.३५-३६)। गौतम के पुत्र शरद्वान् हुये (महाभारत १.१२९. २.६७)

६. **गौतम** – विद्वान् औतथ्य गौतम शरद्वान् नामक धार्मिक हुए –

औतथ्यो गौतमो विद्वान् शरद्वान् नाम धार्मिकः

सप्तम वैवस्वत मन्वन्तर में शरद्वान् नामक धार्मिक विद्वान् उतथ्य पुत्र गौतम सप्तर्षियों में एक थे (ब्र. २ ३८. २८)।

१४. गोतम (वा.उ.३.२६ प्राचीन वा. ६४.२६)

गौतमान्वय – शरद्वान् का वंश अहल्या से उत्पन्न हुआ। पुत्र शतानन्द, उनके सत्यधृति, उनके कृप जो शारद्वत ऋतथ्य (उतथ्य) गौतमान्वय कहलाया।

३. शरद्वत् – एक ऋषीक जिसने सत्य से ऋषित्व प्राप्त किया (ब्र. २.३२.११)। गर्भ से ऋषि थे (वा. ५९.९३)।

५. शरद्वत् (ब्र. ३.७४.६०) औतथ्य शरद्वान् अनुज की पत्नी जो दीर्घतमा की स्नुषा थी, उसे दीर्घतमा ने धर्षण किया। शरद्वान् ने उसे गङ्गा में फेंक दिया (ब्र. ४.४.६१)। त्रिधामा ने शरद्वान् को ब्रह्माण्ड पुराण सुनाया तथा शरद्वान् ने त्रिविक्रमको (वा. १०.३.६१ समान)।

१. शरद्वान – सावर्णि मन्वन्तर में सप्तर्षियों में एक (म. ९. ३२)। गर्भ से ऋषि थे। वा. ५९.९३)। अहल्या का पति, शतानन्द का

पिता (म. ५०.८ वि ४.१९.६३ समान)। म. १४५, ९३ समान) म. १४५.१०४.३३) आङ्गिरसों में एक था।

२. महाभारत के अनुसार शरद्वान् – **औतथ्यो गोतमो विद्वान् शरद्वान्नाम धार्मिकः** (वा. ६४.२३) उतथ्य पुत्र तथा गौतम गोत्र था (वा. ६५.१)।

शरद्वान् (महाभारत)

१. **शरद्वत्** – एक ऋषि का नाम है (१.६३.१०७)। कृप और कृपी के पिता और महर्षि गौतम के शरद्वान् नामक पुत्र। जनमेजय ने यह जानना चाहा कि कृपाचार्य का जन्म किस प्रकार हुआ। वैशम्पायन ने कहा – महर्षि गोतम के एक शरद्वान् नामक पुत्र थे जो सरकण्डों के साथ उत्पन्न हुए थे। उनकी बुद्धि धनुर्वेद में अधिक लगती थी। उन्होंने तपस्यायुक्त होकर सम्पूर्ण अस्त्र प्राप्त किये। धनुर्वेद में उनकी उच्च गति देखकर इन्द्र चिन्तित हो गये और उन्होंने जानपदी नामक एक कन्या को शरद्वान् की तपस्या में विघ्न उत्पन्न करने के लिये कहा। उस देवकन्या ने इन्द्र के आदेशानुसार शरद्वान् के आश्रम में जाकर उन्हें लुभाना आरम्भ किया। उस कन्या को देखकर शरद्वान् यद्यपि विचलित हुए। तथापि अत्यन्त धैर्यपूर्वक अपनी मर्यादा में स्थित रहे। किन्तु उनके मन में सहसा जो विकार देखा गया उससे उनका वीर्य स्खलित हो गया। यद्यपि उन्हें इसका आभास नहीं हुआ। तदनन्तर वे मुनि शरद्वान् अपना आश्रम और उस अप्सरा को छोड़कर चल दिये। उनका वीर्य सरकण्डे के समुदाय पर गिर पड़ा और दो भागों में विभक्त हो गया। उनके उसी वीर्य से एक पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुई। उसी दिन राजा शन्तनु वन में शिकार खेलने आये थे। उनके किसी सैनिक ने उस युगल सन्तान को देखा। उन शिशुओं के पास धनुष-बाण और मृगचर्म आदि देखकर उन लोगों ने यह अनुमान किया कि वे दोनों शिशु किसी धनुर्वेद के पारङ्गत विद्वान् ब्राह्मण की सन्तान । न्तनु उन बालकों को देखते ही कृपा से वशीभूत हो अपने साथ लाय और पालन-पोषण करने लगे। शन्तनु ने यह सोच कर कि

उन्होंने दोनों शिशुओं को कृपापूर्वक पाला है उनका नाम कृप और कृपी रख दिया। शरद्वान् ने अपने तपोबल से जान लिया कि शन्तनु के यहाँ उनकी सन्तान का पालन-पोषण हो रहा है। शरद्वान् ने तब गुप्त रूप से वहाँ आकर अपने पुत्र कृप को गोत्र आदि सब बातों का पूरा परिचय दे दिया। चार प्रकार के धनुर्वेद, नाना प्रकार के शस्त्र तथा सब के गूढ रहस्य का भी पूर्ण रूप से उनको उपदेश दिया। इस प्रकार कृप थोड़े ही दिनों में धनुर्वेद के आचार्य हो गये। धृतराष्ट्र और पाण्डु के पुत्रों तथा यदुवंशियों ने कृपाचार्य से ही धनुर्वेद की शिक्षा ग्रहण की थी (१.१३०) १.१३०, २.७.१४ (गौतमस्य) ५.१६६.२० (कृपः शारद्वतो) २१।

गोतमस्य महर्षेर्य आचार्यस्य शरद्वतः।
कार्तिकेय इवाजेयः शरस्तस्मात्सुतोऽभवत्।

शतानन्द

२. गौतम – गौतम और अहल्या के पुत्र शतानन्द उत्पन्न हुए। उनके पुत्र सत्यधृति, पौत्र शरद्वान् थे (भा. ९ २१-३४-३६)। शरद्वान् के कृप और कृपी हुए।

४. गौतम – सूर्यग्रहण के समय स्यमन्तपञ्चक तीर्थ में कृष्ण-रामदर्शन हेतु उपस्थित ऋषियों में शतानन्द, गौतम, अङ्गिरा, वामदेव के साथ थे (भा.१०.८४.२)।

१. शतानन्द – (म. ५०.८ वि. ४ १९.६३ भा १०.८४.३, ९.२१.३४)।

२. शतानन्द – शतानन्द (भा. १०.८४.३)।

३. शतानन्द – (म. ९.३२, (सावर्णि ऋषि)।

४. शतानन्द – (वा. ९९.२०२) शारद्वत पुत्र। (शतानन्द – गौतम और अहल्या से पुत्र रूप में उत्पन्न (भा. ९.२१.३४)।

उशना

उशना – शङ्कर की उपासना करनेवाले मुनियों में एक (वायु ३०.८५)।

– ज्ञान से ऋषित्व प्राप्त किया, अन्य ऋषि काव्य उशना, उतथ्य, वामदेव, अयास्य (अपोज्य) ऐशिज (वा. ५९.९०.९१)।

– काव्य – अङ्गिरस् ३३ पक्षों में श्रेष्ठ हैं (म. १९४.१०३) मन्त्रकर्ता भी।

– तृतीय द्वापर के व्यास उशना थे (वि. ३.३.१२)।

नीतिशास्त्र के रचयिता उशना थे (वि. १.१९.२६)।

देवासुराचार्य – उशना ने ध्रुव के तप की विशेषता बताई है।

अहोऽस्य तपसो वीर्यमहोऽस्य तपसः फलम्।

यदेनं पुरतः कृत्वा ध्रुवं सप्तर्षयः स्थिताः

(वि. १.१२.९८-९९)।

इन्होंने बृहस्पति-चन्द्र युद्ध में चन्द्र की सहायता की थी
(वि. ४.६.१२)।

समीक्षा – ऋग्वेद में उशना इन्द्र का सहायक, सखा के रूप में है। उसने इन्द्र का वज्र छील-छालकर तक्षण कर बनाने का भी कार्य किया। उस समय की स्थिति से अवगत होता है कि देवों और दैत्यों में विरोध नहीं था पर तैत्तिरीय संहिता में उशना असुरों का पुरोहित बन गया दिखता।

५२ गोतम ऋषियों तथा आचार्यों का परिचय एवं वेदीपबृंहण[१]

१. अङ्गिरा (ब्रह्मपुत्र)
२. रहूगण (अङ्गिरस)
३. गोतम (राहूगण)
४. नोधा (गौतम)
५. एकद्यू: (नौधस)
६. वामदेव गौतम
७. अंहोमुक्
८. मूर्धन्वान्(वामदेव्य:)
९. असिज:
१०. बृहदुक्थ:
११. वाजी (बार्हदुक्थ)
१२. उचथ:
१३. औचथ्यो दीर्घतमा मामतेय:
१४. कक्षीवान्(दैर्घतमस)
१५. कक्षीवान् (औशिज)
१६. वाजश्रवा:
१७. उपवेश:
१८. उपवेशि:
१९. अरुण औपवेशि गौतम
२०. आरुणिरुद्दालक

---

१ **विशेष**: - असिज तथा उशिज को एक मानने से गौतमो की संख्या ५२ ही होती है। वैदिक वाङ्मय में नहीं है।

२१. श्वेतकेतु: (औद्दालकि)
२२. नचिकेता (औद्दालकि)
२३. कुसुरुविन्द औद्दालकि:
२४. प्रोति कौशाम्बेय: कौसुरुविन्दि:
२५. सोमदक्ष: कौश्रेय:
२६. सुमन्त्रो बाभ्रवो गौतम:
२७. अत्यंहस् आरुणि:
२८. राध गौतम:
२९. हारिद्रुमत गौतम:
३०. साति गौतम:
३१. भरद्वाजशिष्य गौतम
३२. गौतमशिष्य गौतम
३३. वात्स्यशिष्य गौतम
३४. आग्निवेश्यशिष्य गौतम
३५. सैतव प्राचीनयोग्य शिष्य गौतम
३६. वात्स्य: (शिष्य गौतम:)
३७. बैजवापायन वैष्ठपुरेय: (शि.गौ.)
३८. अयास्य (आङ्गिरस)
३९. करेणुपाल:
४०. कुमण्ड:
४१. सोमराजक:
४२. शारद्वता: (शरद्वान्)
४३. गाता (गौतम)
४४. संकरो गौतम:
४५. उशिज: (आङ्गिरस)
४६. सुकीर्ति काक्षीवत:
४७. शबर: (काक्षीवत)
४८. दीर्घश्रवा औशिज:
४९. घोषा काक्षीवती
५०. घौषेय: सुहस्त्य:
५१. राघुव:
५२. उतथ्य: (आङ्गिरस)
५३. उशना: (काव्य)

५२ गोतमों में १८ मन्त्रद्रष्टा ऋषि

क्र.	मन्त्रद्रष्टा ऋषि	दृष्ट मन्त्र संख्या
१.	अङ्गिरा (ब्रह्मपुत्र)	६
२.	रहूगण आङ्गिरस	१२
३.	गोतम (राहूगण)	२१४
४.	नोधा (गौतम)	८५
५.	एकद्यूः (नौधास)	१०
६.	वामदेव (गौतम)	५६६
७.	अंहोमुक् (वामदेव्यः)	८
८.	मूर्धन्वान् (वामदेव्यः)	१९
९.	बृहदुक्थः (वामदेव्य)	२१
१०.	उचथ (थ्यः) (आङ्गिरस)	१५
११.	दीर्घतमा (औचथ्यः) मामतेयः	२४२
१२.	कक्षीवान् औशिजः	१६०
१३.	अयास्य आङ्गिरस	४२
१४.	घोषा (काक्षीवतीः)	२८
१५.	शबरः (काक्षीवतः)	४
१६.	सुकीर्तिः (काक्षीवतः)	७
१७.	सुहस्त्यः (घौषेयः)	३
१८.	उशना (काव्य)	३३
	दृष्ट मन्त्रों का योग -	**१४७५**

५२ गोतमों में अतिप्रसिद्ध ऋषि और आचार्य

क्र.	मन्त्रद्रष्टा ऋषि
१.	अङ्गिरा (ब्रह्मपुत्र)
२.	गोतम राहूगण
३.	नोधा (गौतम)
४.	वामदेव (गौतम)
५.	बृहदुक्थ (वामदेव्य)
६.	अयास्य (आङ्गिरस)
७.	दीर्घतमा
८.	कक्षीवान् (औशिज)
९.	घोष (काक्षीवती)
१०.	उशना (काव्य)

प्रसिद्ध आचार्य नाम

१.	अरुण औपवेशि-गौतमः
२.	आरुणि उद्दालक
३.	श्वेतकेतुः (औद्दालकिः आरुणेय)
४.	नचिकेताः (औद्दालकिः)

ऋषियों का परिवार, पुत्र-संबंध

अङ्गिरा (ब्रह्मपुत्र)	१०
उशिज (आङ्गिरस)	६
अयास्य (आङ्गिरस)	१
उचथ्य (आङ्गिरस)	३
उतथ्य (आङ्गिरस)	२
उशना (काव्य)	१
दीर्घश्रवा (औशिज)	१

पुत्र संबंध

वाजश्रवाः	३
आरुणि (उद्दालक)	८
स्वतंत्र	१७
योग –	५२

अधिकाधिक मन्त्र-संख्या की दृष्टि से ऋषिक्रम

क्र.	मन्त्रद्रष्टा ऋषि	द्रष्ट मन्त्र संख्या
१.	वामदेव (गौतम)	५६६
२.	दीर्घतमा (औचथ्य, मामतेय)	२४२
३.	गोतम (राहूगण)	२१४
४.	कक्षीवान् (औशिज)	१६०
५.	नोधा (गौतम)	८५
६.	अयास्य (आङ्गिरस)	४२
७.	उशना (काव्य)	३३
८.	घोषा (काक्षीवती)	२८
९.	बृहदुक्थ (वामदेव्य)	२१
१०.	मूर्धन्वान् (वामदेव्य)	१९
११.	उचथ (आङ्गिरस)	१५
१२.	रहूगण (आङ्गिरस)	१२
१३.	एकद्यूः (नौधस)	१०
१४.	अंहोमुक् (वामदेव्य)	८
१५.	सुकीर्तिः (काक्षीवत)	७
१६.	अङ्गिरा (ब्रह्मपुत्र)	६
१७.	शबरः (काक्षीवत)	४
१८.	सुहस्त्य (घौषेयः)	३
	दृष्ट मन्त्रों का योग -	**१४७५**

ऋषिनाम के वर्णानुक्रम से मन्त्रसंख्या

क्र.	मन्त्रद्रष्टा ऋषि	दृष्ट मन्त्रसंख्या
१.	अङ्गिरा (ब्रह्मपुत्र)	६
२.	अयास्य (आङ्गिरस)	४२
३.	अंहोमुक् (वामदेव्य)	८
४.	उचथ्य (आङ्गिरस)	१५
५.	उशना (काव्य)	३३
६.	एकद्यूः (नौधस)	१०
७.	कक्षीवान् (औशिज)	१६०
८.	गोतम (राहूगण)	२१४
९.	घोषा (काक्षीवती)	२८
१०.	दीर्घतमा (औचथ्य, मामतेय)	२४२
११.	नोधा (गौतम)	८५
१२.	बृहदुक्थ (वामदेव्य)	२१
१३.	मूर्धन्वान् (वामदेव्य)	१९
१४.	रहूगण (आङ्गिरस)	१२
१५.	वामदेव (गौतम)	४६६
१६.	शबर (काक्षीवत)	४
१७.	सुकीर्ति (काक्षीवत)	७
१८.	सुहस्त्य (घौषेयः)	३
	दृष्ट मन्त्रों का योग -	**१४७५**

गोतम ऋषियों द्वारा दृष्ट मन्त्रों का मण्डलक्रम

क्र.	ऋषि	मण्डल	सूक्त	मन्त्र	मण्डल	सूक्त	कुल मन्त्र
१.	नोधा	१	५८-६४	७४	८, ९	८८, ९३	८४
२.	गोतम राहूगण	१	७४-९३	२०४	९, १०	३१-६७, २३	२१४
३.	कक्षीवान्	१	११६-१२५ १२६/५	-	९	६४	१६०
४.	दीर्घतमा	१	१४०-१६४	२४२	-	-	२४२
५.	वामदेव	४	३ सूक्त छोड़कर	५६६	-	-	५६६
६.	उशना	८	८४		९	८७-८९	३३
७.	उचथ्य	९	५०-५२				१५
८.	घोषा	१०	३९-४०				२८
९.	सुहस्त्य	१०	४१				३
१०.	अङ्गिरा	१०	६२				६
११.	मूर्धन्वान्	१०	८८				१९
१२.	अंहोमुक्	१०	१२६				८
१३.	सुकीर्ति	१०	१३१				७
१४.	शबर	१०	१६९				४
१५.	एकद्यूः	८	८०				१०
१६.	रहूगण	९	३७-३८	१२			१२
१७.	अंयास्यः	९	४४-४६	१८	१०	६७-६८	४२
१८.	बृहदुक्थ	१०	५४-५६	२१			२१
						योगः	१४७५

गोतम वंश (पु

अङ्गिरा (
२ रहूगण अङ्गिरस (१२)
३ अयास्य आङ्गिरस (४२)
४ उचथ्य (१५)
८ गोतम राहूगण (२१४)
१० दीर्घतमा (२४
९ कक्षीवान्
दैर्घतमस
नोधा १२ (८५) गौतम
१३ वामदेव (५६६)
एकद्यू: १६(१०)
बृहदुक्थ १७(२१)
वामदेव्य
अंहोमुक् १८(८)
वामदेव्य
१९मूर्धन्वान् (१९)
वामदेव्य
नौधस
वाजी २४ बार्हदुक्थ
२६ वाजश्रवा:
२९ उपवेश (उपवेशि)
२७ कुश्रिर्वाजश्रवस
३० अरुण औपवेशि:
२८ सोमदत्त: कौश्रेय:
३१ आरुणिरुद्दालक:
३२ अत्यंहस् आरुणि
३३ श्वेतकेतु: औद्दालकि आरुणेय
३४ नचिकेता: औद्दालकि:
३५ कुसुरुविन्द औद्दालकि
३६ प्रोति कौशाम्बेय कौसुरुविन्दि

पुत्र या शिष्यसंबंध)

( ) कोष्ठ में मन्त्रों की संख्या